ISSN No : 2583-3316

कृषि उद्यान दर्पण

Society for Advancement in Agriculture, Horticulture & Allied Sectors

SAAHAS

भाग 5 अंक 1 अप्रैल 2025

ISSN No. 2583-3316

कृषि उद्यान दर्पण

इस पृष्ठ में

- हाइड्रोजेलः जल संकट में कृषि के लिए वरदान 1-2
  मयंक शर्मा
- ह्यूमिक एसिड एवं पौधे के लिए इसका महत्व 3-5
  राजबहादुर, अजय श्रीवास्तव, अक्षय श्रीवास्तव, रौशन कुमार एवं आशीष
- मृदा सौर्यीकरण क्या है एवं इसकी आवश्यकता 6-8
  अजय श्रीवास्तव, राजबहादुर, अक्षय श्रीवास्तव, रौशन कुमार एवं आशीष कुमार
- परवल में फलन की समस्या एवं निदान 9-12
  सुधीर दास, प्रमिला, बरुन, आनंद प्रसाद राकेश, संतोष कुमार सिंह एवं टी. पी. महतो
- मैंगोस्टीन की खेती के लाभ और उपयोग 13-15
  शिल्पा, रिम्पिका एवं अंकिता सूद
- किसानों की आय के लिए वरदान है रजनीगंधा की खेती 16-20
  अजय कुमार, अमित कनौजिया, अजय कुमार सिंह, निकिता मौर्या, कुमारी अंजली एवं आशीष प्रताप सिंह
- वैज्ञानिक विधि द्वारा चने की खेती 21-23
  अभिषेक कुमार एवं कनक लता
- करौंदाः शुष्क क्षेत्रों के लिए एक बहुउद्देशीय फल 24-26
  अजय कुमार, यामिनी यादव, आदित्य इंगोले एवं अमित कुमार मौर्या
- बीज प्राइमिंग के विभिन्न तकनीक 27-29
  प्रमिला, श्याली कुमारी, अविनाश कुमार पटेल, संजय कुमार एवं पंकज सिंह
- शीतकालीन सब्जियाँः उत्तम स्वास्थ्य के लिए वरदान 30-31
  प्रहलाद सहाय शर्मा, रोनक कूड़ी, नरेश कुमार, कुलदीप सिंह राजावत एवं मनोहर लाल मीणा
- आयुर्वेद का वरदानः गिलोय 32-33
  रोनक कूड़ी, प्रहलाद सहाय शर्मा, कल्पना एवं अनिता चौधरी
- मेथी की वैज्ञानिक खेती 34-36
  ऋतु सदरे, श्रुति बी. जनकात एवं एच. वी. वसावा

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के निजी हैं। प्रकाशित/सम्पादक इसके लिये उत्तरदायी नहीं है। इस पत्रिका से सम्बन्धित वाद का निस्तारण क्षेत्र प्रयागराज होगा।*

- रागी (मडुआ) उत्पादन की उन्नत कृषि तकनीकी — 37-40
  हरिशंकर एवं प्रदीप कुजुर
- अजोलाः यूरिया के प्रतिस्थापन के लिए एक प्रभावी जैव उर्वरक — 41-43
  योगेश कुमार
- मृदा परीक्षण हेतु मृदा नमूना लेने की वैज्ञानिक विधि — 44-46
  राजबहादुर, अजय श्रीवास्तव, अक्षय श्रीवास्तव एवं रौशन कुमार
- फल-सब्जियों के बेकार जाने वाले भागों का उपयोग — 47-48
  अरुण प्रकाश एवं विनय प्रकाश
- दलहनी फसल (चना) में कृषि पारिस्थितीकीय विश्लेषण आधारित कीट प्रबंधन — 49-51
  चंचल सिंह, श्याम सिंह, नरेन्द्र सिंह एवं नन्द किशोर वाजपेई
- पपीता की खेती में विषाणुजनित रोगों का सही प्रबंधन — 52-54
  के. के. मिश्र एवं अंकिता राव
- कृषि में ई-गवर्नेंस और ICT किसानों के लिए डिजिटल क्रांति और सरकारी सेवाओं की सहज पहुँच — 55-56
  अंजना गुप्ता एवं आर. एल. राउत
- फल एवं सब्जियों की परिरक्षण की सामान्य विधियाँ — 57-59
  अरुण प्रकाश एवं विनय प्रकाश
- जैविक खेती वर्तमान की आवश्यकता — 60-62
  गौरव शुक्ला, पूजा कनौजिया खलील खाँन एवं राजेश राय
- सब्जी बीजों का भण्डारण — 63-64
  सुधीर दास, प्रमिला, बरुन, आनंद प्रसाद राकेश, संतोष कुमार सिंह एवं टी. पी. महतो
- कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका — 65-66
  कल्पना, रोनक कूड़ी, अनिता चौधरी एवं सुरेंद्र कुमार मुंड
- राइजोबियम जैव उर्वरकः एक विश्लेषण — 67-69
  योगेश कुमार
- जलवायु परिवर्तनः कृषि और खाद्य आपूर्ति पर एक खतरा — 70-71
  विकास प्रताप सिंह, पलाश रॉय एवं हिमांशु शर्मा
- 2024 में कृषि का डिजिटल युग स्मार्ट तकनीकों से कृषि का पुनर्निर्माण — 72-74
  अंजना गुप्ता एवं आर. एल. राउत
- स्मार्ट कृषि उपकरणों का प्रयोग और उनकी संभावनाएँ — 75-76
  जिज्ञासा निनामा, विक्रम पॉल एवं करिश्मा सिंह
- स्मार्ट फार्मिंगः आधुनिक कृषि की ओर एक नई दिशा — 77-80
  आशीष प्रताप सिंह, नीतेश कुमार, राखी सिंह, अजय कुमार, मेराज खान एवं ऋषि शर्मा

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के निजी हैं। प्रकाशित/सम्पादक इसके लिये उत्तरदायी नहीं है। इस पत्रिका से सम्बन्धित वाद का निस्तारण क्षेत्र प्रयागराज होगा।*

ISSN No. 2583-3316

- फलों की फसलों में निष्फलता: कारण और प्रबंधन 81-84
  रजनी सोलंकी, शीतल शिंदे एवं विशाल पटेल
- गेहूँ की फसल को बीमारियों से बचाएँ: सिंचाई के बाद रोग नियंत्रण का महत्व 85-86
  अंकिता राव एवं के. के. मिश्र

❖❖

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के निजी हैं। प्रकाशित/सम्पादक इसके लिये उत्तरदायी नहीं है। इस पत्रिका से सम्बन्धित वाद का निस्तारण क्षेत्र प्रयागराज होगा।*

ISSN No. 2583-3316

कृषि उद्यान दर्पण

3/2, ड्रमण्ड रोड, (नथानी अस्पताल के सामने), प्रयागराज-211001, (U.P.) दूरभाष-9452254524
वेबसाइट : saahasindia.org, ई-मेल-contact.saahas@gmail.com
Article Submission :– krishiudyandarpan.hi@gmail.com

सम्पादकीय मण्डल

प्रधान संपादक	:	**प्रो. (डॉ.) विवेक कुमार त्रिपाठी** अधिष्ठाता, उद्यान संकाय, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ. प्र.)
वरिष्ठ संपादक	:	**डॉ. रोशन लाल राऊत** वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं विभागाध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, बालाघाट (एम.पी.)
सह सम्पादक गण	:	**डॉ. नीलम राव रंगारे** वैज्ञानिक, संस्था निदेशालय इन्दिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, लाभण्डी, रायपुर (छत्तीसगढ़) **डॉ. नंगखाम जेम्स सिंह** पशुचिकित्सक क्षेत्र सहायक,पशुपालन एवं डेयरी विभाग, शुआट्स, (उ.प्र.) **डॉ. खलील खान** मृदा वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केन्द्र दलीप नगर कानपुर देहात, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कानपुर (उ.प्र.) **डॉ सुधीर दास** सह-प्राध्यापक, सब्जी विज्ञान, उद्यान विभाग, पंडित दीन दयाल उपाध्याय उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, पिपरकोठी, बिहार **डॉ. प्रमिला** सहायक अध्यापक-सह-वैज्ञानिक, सब्जी विज्ञान, उद्यान विभाग पं. दीन दयाल उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, पिपरी, कोठा, बिहार **प्रखर खरे** एम.एस.सी. उद्यान विज्ञान विभाग, शुआट्स, प्रयागराज (उ.प्र.)
पांडुलिपि संपादक	:	**स्निग्धा हल्दर** सहायक संपादक, एग्रो इण्डिया पब्लिकेशन, प्रयागराज, (उ.प्र.)
कंटैट लेखक/ स्तंभ लेखक	:	**डॉ. विशाल नाथ पाण्डेय** विशेष कार्य अधिकारी आई.सी.ए.आर., आई.ए.आर.आई, झारखण्ड, हजारीबाग (झारखण्ड)
फोटोग्राफी	:	**स्वप्निल सुभाष स्वामी** वेब एडिटर प्रितेश हलदार
प्रकाशक	:	**एग्रो इण्डिया पब्लिकेशन, प्रयागराज, (उ.प्र.)**
प्रकाशक	:	**Society for Advancement in Agriculture, Horticulture & Allied Sectors (SAAHAS)**

❖❖

ISSN No. 2583-3316

हाइड्रोजेलः जल संकट में कृषि के लिए वरदान

मयंक शर्मा
सब्जी विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, कृषि विश्वविद्यालय जोधपुर, राजस्थान
पत्राचारकर्ता: Mayanksharma2979@gmail.com

परिचय

भारत सहित दुनिया के कई हिस्से आज जल संकट और जलवायु परिवर्तन के गंभीर प्रभावों का सामना कर रहे हैं। बढ़ती जनसंख्या, सीमित जल संसाधन और बदलते मौसम के कारण कृषि उत्पादन में भारी चुनौतियाँ उत्पन्न हो रही हैं। ऐसे में हाइड्रोजेल, एक आधुनिक और प्रभावी तकनीक के रूप में उभरकर किसानों के लिए वरदान साबित हो रही है। यह जल-अवशोषक बहुलक न केवल फसलों को लंबे समय तक नमी प्रदान करता है बल्कि मृदा उर्वरता और फसल उत्पादकता को भी बेहतर बनाता है। आज, जब सूखे और अनियमित वर्षा के कारण कृषि प्रभावित हो रही है, तो हाइड्रोजेल तकनीक जल संरक्षण और फसल विकास में क्रांति ला रही है। यह तकनीक विशेष रूप से उन क्षेत्रों के लिए उपयोगी है, जहाँ सिंचाई संसाधन सीमित हैं। अपने अद्वितीय गुणों के कारण, हाइड्रोजेल आधुनिक कृषि के लिए जल संकट का समाधान और उत्पादकता बढ़ाने का एक सशक्त माध्यम बन गया है। इस लेख में हम हाइड्रोजेल की संरचना, कार्य, उपयोग और इसके कृषि क्षेत्र में अनुप्रयोग पर विस्तार से चर्चा करेंगे, ताकि इसे अपनाने वाले किसानों और शोधकर्ताओं को इसकी पूरी जानकारी प्राप्त हो सके।

हाइड्रोजेल क्या है?

हाइड्रोजेल जल-अवशोषक बहुलक (पॉलीमर) है, जो सूखी अवस्था में अपने वजन का 400-600 गुना पानी अवशोषित कर सकता है। यह एक त्रि-आयामी संरचना है, जिसमें पानी को जेल रूप में बाँधने की क्षमता होती है। हाइड्रोजेल मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं: प्राकृतिक और सिंथेटिक।

हाइड्रोजेल की संरचना

- **त्रि-आयामी संरचनाः** इसका नेटवर्क पानी को पकड़कर रखने में सक्षम है।
- **क्रॉस-लिंक्ड पॉलिमरः** इन पॉलिमर के बीच जल संग्रहण और धीरे-धीरे जल छोड़ने की क्षमता होती है।
- **जैव-अनुकूलताः** यह पर्यावरण और मृदा के लिए हानिकारक नहीं होता है।

मुख्य गुण

- **जल-अवशोषण क्षमताः** यह शुष्क अवस्था में भी बड़ी मात्रा में पानी सोख सकता है।
- **धीमा जल निकासः** यह पौधों को लंबे समय तक पानी उपलब्ध कराने में मदद करता है।
- **सघनता में स्थायित्वः** इसकी संरचना फसल की वृद्धि अवधि तक प्रभावी रहती है।

हाइड्रोजेल का कृषि में महत्व

क) जल प्रबंधन में सुधारः हाइड्रोजेल शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में जल संकट को कम करने का एक उत्कृष्ट साधन है। यह पानी को लंबे समय तक मृदा में संरक्षित रखता है, जिससे सिंचाई की आवश्यकता कम हो जाती है।

ख) मृदा की उर्वरता में वृद्धिः हाइड्रोजेल मृदा की जल धारण क्षमता और संरचना को बेहतर बनाता है। यह सूक्ष्म पोषक तत्वों को पौधों तक धीरे-धीरे पहुँचाने में मदद करता है।

ग) फसल की उत्पादकता में सुधारः यह पौधों की जड़ों तक जल और पोषक तत्वों की निरंतर आपूर्ति करता है, जिससे फसल की वृद्धि और उपज में वृद्धि होती है।

घ) बीज अंकुरण और पौधारोपण में सहायकः हाइड्रोजेल बीज अंकुरण दर को बढ़ाता है और पौधारोपण के बाद जल

तनाव से बचाता है। यह शुरुआती अवस्था में पौधों को स्थिरता प्रदान करता है।

ङ) सूक्ष्म पोषक तत्व प्रबंधनः हाइड्रोजेल में पोषक तत्वों को मिलाकर उपयोग करने से पौधों को लंबे समय तक पोषण मिलता है।

च) कृषि लागत में कमीः सिंचाई और उर्वरकों की आवश्यकता को कम करके यह कृषि लागत को कम करता है।

हाइड्रोजेल के प्रकार

अ. प्राकृतिक हाइड्रोजेल

- **स्त्रोतः** चिटोसन, अगर-अगर और अल्जिनेट।
- **विशेषताएँ:** जैव क्षयशील और पर्यावरण के लिए सुरक्षित।
- **उपयोगः** जैविक खेती और पर्यावरण-अनुकूल कृषि में।

ब. सिंथेटिक हाइड्रोजेल

- **स्त्रोतः** पॉलिएक्रिलामाइड और पॉलिविनाइल अल्कोहल।
- **विशेषताएँ:** अधिक जल-अवशोषण क्षमता और लंबी आयु।
- **उपयोगः** बड़े पैमाने की आधुनिक कृषि में।

हाइड्रोजेल के लाभ

कृषि में योगदान

क) जल संरक्षणः हाइड्रोजेल के उपयोग से सिंचाई की आवश्यकता 40-50% तक कम हो सकती है।

ख) उपज में सुधारः मृदा नमी और पोषक तत्वों की उपलब्धता सुनिश्चित होने से फसल की उत्पादकता बढ़ती है।

ग) पानी की गुणवत्ता में सुधारः यह जल-निकास और मृदा कटाव को नियंत्रित करता है।

घ) सिंचाई में सुधारः यह पानी को समान रूप से वितरित करता है।

पर्यावरणीय लाभ

क) मृदा कटाव की रोकथामः यह पानी के साथ मृदा बहाव को रोकने में मदद करता है।

ख) रासायनिक उर्वरकों का बेहतर उपयोगः हाइड्रोजेल रसायनों को धीमे गति से पौधों तक पहुँचाता है।

ग) कार्बन फुटप्रिंट में कमीः हाइड्रोजेल के उपयोग से पानी और उर्वरक की खपत कम होती है।

हाइड्रोजेल के उपयोग की विधियाँ

- **बीज के साथ मिलाकरः** हाइड्रोजेल बीज अंकुरण दर और प्रारंभिक वृद्धि में सुधार करता है।
- **पौधारोपण के समयः** हाइड्रोजेल पौधों के चारों ओर लगाया जाता है ताकि जड़ों को निरंतर नमी मिलती रहे।
- **फर्टिगेशन मेंः** पोषक तत्वों के साथ मिलाकर हाइड्रोजेल का उपयोग किया जाता है।
- **फसल के विकास चरण मेंः** जल संकट के समय हाइड्रोजेल का उपयोग किया जाता है।

हाइड्रोजेल की सीमाएँ

- **उच्च लागतः** छोटे और सीमांत किसानों के लिए हाइड्रोजेल का प्रारंभिक निवेश महँगा हो सकता है।
- **मिट्टी के प्रकार पर निर्भरताः** भारी मिट्टी में इसकी प्रभावशीलता कम होती है।
- **सिंथेटिक हाइड्रोजेल का पर्यावरणीय प्रभावः** हाइड्रोजेल का उपयोग लंबे समय तक किये जाने पर प्लास्टिक प्रदूषण का कारण बन सकते हैं।
- **ज्ञान और तकनीकी जानकारी की कमीः** ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों को इसके उपयोग की जानकारी का अभाव है।

भारत में हाइड्रोजेल का उपयोग और संभावनाएँ

वर्तमान परिदृश्यः भारत में कुछ सूखा प्रभावित क्षेत्रों, जैसे राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र में हाइड्रोजेल का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। दाल, तिलहन, सब्जी और बागवानी फसलों में इसका उपयोग व्यापक रूप से किया जा रहा है। **सरकारी प्रयासः** सरकार द्वारा जल संरक्षण और उन्नत कृषि के लिए हाइड्रोजेल तकनीक को प्रोत्साहित करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

भविष्य की संभावनाएँ

- **बायोडिग्रेडेबल हाइड्रोजेलः** पर्यावरणीय नुकसान को कम करने के लिए इनका उपयोग किया जा रहा है।
- **सूक्ष्म पोषक तत्व युक्त हाइड्रोजेलः** जल और पोषण दोनों की आपूर्ति करता है।
- **ड्रोन आधारित छिड़काव तकनीकः** बड़े खेतों में तेजी से वितरण के लिए।

निष्कर्ष

हाइड्रोजेल तकनीक कृषि में जल संकट और उत्पादकता बढ़ाने के लिए एक महत्वपूर्ण समाधान है। हालांकि उच्च लागत और सीमित ज्ञान जैसी चुनौतियाँ हैं, लेकिन इन पर काबू पाकर हाइड्रोजेल को व्यापक रूप से अपनाया जा सकता है, जिससे यह तकनीक न केवल किसानों की आय बढ़ाने में सहायक होगी, बल्कि सतत कृषि और पर्यावरण संरक्षण के लक्ष्य को भी पूरा करेगी।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

ह्यूमिक एसिड एवं पौधे के लिए इसका महत्व

राजबहादुर, अजय श्रीवास्तव, अक्षय श्रीवास्तव, रौशन कुमार* एवं आशीष

मृदा विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड

पत्राचारकर्ता: raushankumar2778@gmail.com

परिचय

मृदा में ह्यूमिक एसिड की कमी, सबसे विघटनकारी मानवीय गतिविधियों में से एक है। मृदा में, यह एक उच्च वाह्य कृषि इनपुट है। अधिक उत्पादकता और बढ़ती आबादी को खाना खिलाने की आवश्यकता के कारण, ह्यूमिक एसिड का प्रयोग वर्तमान आर्थिक प्रतिमान द्वारा उचित पाया गया है। हम खतरनाक रूप से ग्रह के संसाधनों और भूख दोनो के करीब है, जिससे खाद्य असुरक्षा बढ़ गयी है और गैर नवीनीकरण रासायनिक उर्वरकों और कीट नाशकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी और जल संसाधनों एवं पर्यावरण गुणवत्ता में गिरावट से कृषि उत्पादकता को खतरा होता है। ह्यूमिक एसिड एक महत्वपूर्ण मृदा घटक है, जो पोषक तत्वों में सुधार कर सकता है। ह्यूमिक एसिड के परिस्थितिक लाभ विविध प्रकार के है, जो कि पर्यावरणीय समस्याओं और पर्यावरण के संरक्षण के लिए लाभदायक और प्रभावी समाधान का प्रतिनिधित्व करत है। कृषि उत्पादन प्रणाली में अनुपयुक्त और अस्थिर उत्पादन तकनीकों के व्यापक उपयोगों के परिणामस्वरूप मिट्टी की गुणवत्ता में व्यापक गिरावट हुई है।

ह्यूमिक एसिड की परिभाषा

ह्यूमिक एसिड को मिट्टी में पाये जाने वाले सबसे अधिक जैव रासायनिक रूप से सक्रिय सामग्रियों में से एक माना जाता है और इसे पृथ्वी पर सबसे अधिक प्रचुर मात्रा में पाये जाने वाला कार्बनिक अणु माना जाता है और इसे स्वस्थ उपजाऊ मिट्टी का सबसे महत्वपूर्ण घटक भी कहा जाता है। ह्यूमिक एसिड शब्द का उपयोग मिट्टी, पौधो, समुद्री घास, कवक, तलछट और स्थलीय और समुद्रीय जल में पाये जाने वाले भूरे काले बहुलक, क्षार घुलनशील एसिड के लिए किया जाता है। ह्यूमिक एसिड ह्यूमिक पदार्थों का मुख्य अंश है और यह मिट्टी और खाद कार्बनिक पदार्थ का अंश और सबसे सक्रिय घटक है ह्यूमिक एसिड भी मिट्टी में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध पदार्थ

है और कार्बनिक पदार्थ के अपघटन का एक जैव उत्पाद है, जिसका उपयोग विभिन्न फसलो की खेती में सफलतापूर्वक किया जाता है।

आमतौर पर ह्यूमिक एसिड आणविक भार में उच्च गहरे, भूरे रंग का और क्षारीय घोल में घुलनशील होता है। ह्यूमिक एसिड में कार्बनिक पदार्थ का एक बड़ा परिवार शामिल है।

ह्यूमिक एसिड सिन्थैटिक या जैविक उर्वरको के पूरक के रूप में उपयोग करने के लिए एक प्रभावी एजेन्ट है।

ह्यूमिक एसिड के स्त्रोत

ह्यूमिक एसिड आमतौर पर पुराने पौधो के पदार्थ में बनते है, इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि कटी हुई फसलों में से पौधो के अवषेश मिट्टी में वापस आजाये। निम्न श्रेणी के कोयले का उपयोग कृषि में ह्यूमिक एसिड के समृद्ध स्त्रोत के रूप में सफलतापूर्वक किया जा सकता है। कुछ विकासशील दशों ने ह्यूमिक एसिड के समृद्ध स्त्रोत के रूप में कृषि में भारी मात्रा मेंलिग्नाइट कोयले का उपयोग कियाहै।

ह्यूमिक एसिड की संरचना

ह्यूमिक एसिड की संरचना में निम्नलिखित पोषक एवं सूक्ष्म पोषक तत्व होते हैं

- कार्बन 51-57%
- नाइट्रोजन 4-6%
- फॉस्फोरस 0.2-1%
- ऑक्सीजन 79-56%
- हाइड्रोजन 1.6-11%

ह्यूमिक एसिड के लाभ

- ह्यूमिक एसिड के प्रयोग से मिट्टी में कार्बनिक प्रदार्थो की पूर्ति होती है।
- इसके प्रयोग से पौधे मिट्टी से बेहतर पोषक तत्व ग्रहण कर पाते है।
- ह्यूमिक एसिड के प्रयोग से पौधे में क्लोरोफिल संश्लेषण में वृद्धि मिट्टी होती है, जिससे पौधे अधिक स्वस्थ कार होते है
- पौधे की जड़ जीवन शक्ति में वृद्धि होती है इसके परिणामस्वरूप पौधे का जीवन काल लम्बा होता है।
- ह्यूमिक एसिड के द्वारा बीजों का बेहतर अंकुरन होता है।
- ह्यूमिक एसिड के प्रयोग से मिट्टी की उर्वरक धारण क्षमता में वृद्धि होती है।
- इस एसिड के दौरान मिट्टी में लाभकारी माइक्रो वियल को उत्तेजित करने की गतिविधि होती है।
- स्वस्थ पौधे और बेहतर पैदावार होती है।
- ह्यूमिक एसिड मिट्टी में पोषक तत्वों को मुक्त करने में फायदेमंद होते है ताकि वे आवश्यकतानुसार पौधे को उपलब्ध हो सके।
- ह्यूमिक एसिड के अणु छोटे होते है, जो पौधे के प्लाज्मा झिल्ली तक पहुँचने की अनुमति देते है। जहाँ वे पोषक तत्वों के अवशोषण को प्रभावी ढ़ग से प्रभावित करते हैं।
- ह्यूमिक एसिड बाहरी जहरीली धातुओं को भी जमा करने की कुशलता रखता है।
- ह्यूमिक एसिड तत्वों की उपलब्धता बढ़ा सकता है और रसायनिक, जैविक व भौतिक रूप से मिट्टी के गुणों में सुधार कर सकता है।
- ह्यूमिक एसिड से कोशिका झिल्ली पर जिनसे खनिजों का परिवहन बढ़ता है एवं प्रोटीन संश्लेषण में सुधार होता है, उनमे पादपहार्मोन जैसी गतिविधि होती है, जिससे प्रकाश संश्लेषण को बढ़ावा मिलता है।
- इसके प्रभाव से संशोधित एन्जाइम गतिविधियाँ होती है, सूक्ष्म तत्व और स्थूल तत्वों की घुलनशीलता बढ़ जाती है।
- ह्यूमिक एसिड के प्रयोग से विशाक्त खनिजों के स्तर में कमी आती है और माइक्रोवियल आबादी को उत्तेजित करता है।
- मिट्टी में ह्यूमिक एसिड के प्रयोग से फसल को काफी लाभ प्राप्त होता है।

फसल उत्पादन पर ह्यूमिक एसिड का प्रभाव

- पौधों की वृद्धि और विकास पर ह्यूमिक एसिड का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लाभकारी प्रभाव पड़ता है।
- ह्यूमिक एसिड के प्रयोग से पौधो की वृद्धि और प्रकाश संश्लेषण पदार्थ और जैविक उपज में सुधार होता है।
- चावल एवं सरसों की फसल प्रणाली में कीट और बीमारी की घटनाओं को सफलतापूर्वक कम करने के लिए एनःपीःके की अनुसंशित खुराक तय करके ह्यूमिक एसिड और खाद के साथ जस्ता और बोरॉन का उपयोग एक प्रभावी पोषण सम्बन्धी हेर-फेर हो सकता है।
- ह्यूमिक एसिड का पत्तों पर स्प्रे बीज उपचार में उपयोग करके अनाज की उपज घटकों में वृद्धि होती है।
- ह्यूमिक एसिड का गेहूँ की पत्तियों पर स्प्रे करने से स्पाइक की लम्बाई, स्पाइक की संख्या, दानों का वजन के साथ उपज में भी वृद्धि होती है।
- ह्यूमिक एसिड का प्रयोग करके न केवल फलस की उपज बढ़ाता है बल्कि अनाज में कार्बोहाइड्रेड और प्रोटीन की उच्च मात्रा से गुणवत्ता भी बढ़ती है।

• ह्यूमिक एसिड से पौधे की, कोशिका झिल्ली, ऑक्सीजन अवशोषण, श्वसन और प्रकाश संश्लेषण, पोषक तत्व ग्रहण, जड़ और कोशिका बढ़ाव पर ह्यूमिक एसिड के लाभकारी प्रभाव होता है।

• ह्यूमिक एसिड मिट्टी या पत्ते दोनो में प्राप्त करने वाले उपचारों से पौधे की ऊँचाई एवं एफबीआर में वृद्धि हुई।

ह्यूमिक एसिड के प्रयोग की कमियाँ

• ह्यूमिक एसिड को बहुत अधिक खुराक में प्रयोग करने से पौधे कम प्रभावी होते है।

• ह्यूमिक एसिड के इन रसायनों के अत्यधिक उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण हो सकता है।

• अधिक ह्यूमिक एसिड का उपयोग मिट्टी को अत्यधिक एसिटिक, एसिड बना सकता है, जिससे मिट्टी की उपजाऊ क्षमता में कमी हो सकती है।

• इसके अधिक उपयोग से फसलों की गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है।

• आवश्यकता से अधिक मात्रा में ह्यूमिक एसिड का उपयोग पानी के संचार में विघ्न डाल सकता है, जिससे पौधों को प्राप्त होने वाला पानी कम हो सकता है।

• पौधों को पोषक तत्व ग्रहण करने में कठिनाई हो सकती है।

• फसलों में प्रतिरोधक क्षमता में भी कमी हो सकती है।

फसलों में ह्यूमिक एसिड के इस्तेमाल के समय लेने वाली सावधानियाँ

• ह्यूमिक एसिड कोटॉनिक/कवकनाशी/अमीनो एसिड और किसी भी कीटनाशक के साथ मिलाकर स्प्रे कर सकते हैं।

• खरपतवार नाशक के साथ ह्यूमिक एसिड मिलाकर स्प्रे न करे, इससे फसल खराब हो सकती है।

• तापमान $35^{o}C$ से अधिक होने पर इसका छिड़काव नही करना चाहिए इससे ह्यूमिक एसिड का असर फसलों पर कम दिखाई देता है।

• शाम के समय छिड़काव करने से बेहतर परिणाम मिलते है।

• ह्यूमिक एसिड का कभी भी अधिक तापमान एवं दोपहर के समय छिड़काव नही करना चाहिऐ।

निष्कर्ष

ह्यूमिक एसिड एक महत्वपूर्ण घटक है यह मिट्टी की जैविक संरचना का एक आंतरिक हिस्सा है। कई वैज्ञानिकों, कृषिविदों और किसानों ने मिट्टी की स्थिति और पौधों की वृद्धि में सुधार के लिए ह्यूमिक एसिड का इस्तेमाल किया है। ह्यूमिक एसिड मिट्टी के नकारात्मक गुणों, पौधे की वृद्धि और पोषक तत्वों के अवशोषण में सुधार कर सकता है। इससे लाभ उठाने के लिए ह्यूमिक एसिड की खुराक महत्वपूर्ण है। ह्यूमिक एसिड को पूरी फसल अवधि में थोड़ी मात्रा में डालना सबसे अच्छा होता है। यह बहुत महत्वपूर्ण है कि कटी हुई फसलों से पौधों का कचरा मिट्टी में वापस आ जाए।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

मृदा सौर्यीकरण क्या है एवं इसकी आवश्यकता

अजय श्रीवास्तव*, राजबहादुर, अक्षय श्रीवास्तव, रौशन कुमार एवं आशीष कुमार

मृदा विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, गो. ब. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड

पत्राचारकर्ता: ajayasoiliari@gmail.com

परिचय

मृदा सौर्यीकरण से आशय मिट्टी से फैलने वाले कीटों या रोगजनकों को नियंत्रित करने के लिए कीटनाशकों और अन्य रसायनों के उपयोग को कम करने की विधि है। सौर्यीकरण एक हाइड्रोथर्मल प्रक्रिया है, जो नम मिट्टी में होती है एवं पॉलीथीन फिल्म से ढकी होती है और गर्मियों के दौरान सीधे सूर्य की रोशनी के सम्पर्क में आती है। मिट्टी से उत्पन्न वायरस और कीटों को पूरी तरह या आंशिक रूप से खत्म करने के लिए मुख्यरूप से सौर-विकिरण एकत्र करता है और इसे परिवर्तित करता है। मृदा सौर्यीकरण एक अपेक्षाकृत ऐसी विधि है, जो कि मिट्टी की पोषक तत्वों की उपलब्धता में सुधार, उसकी उर्वरता और उत्पादकता बढ़ाने में सहायता करता है एवं सौर्यीकरण में उपयोग की जाने वाली पॉलीथीन की फिल्में बदलते मौसम के दौरान पंक्ति कवर के रूप में बनाये रखने पर खरपतवार को कम करने के लिए गीली घास के रूप में काम कर सकती है।

मृदा सौर्यीकरण एक अपेक्षाकृत कम लागत वाली प्रक्रिया है जिसे रेतीली, चिकनी, मिट्टी या दोमट मिट्टी सहित किसी भी प्रकार की मिट्टी पर किया जा सकता है। इसके लिए न्यूनतम उपकरणों की आवश्यकता होती है। इसे किसान आसानी से कर सकते है, जिससे यह मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार के लिए एक सुलभ और व्यवहारिक विकल्प बन जाता है। मृदा सौर्यीकरण का उपयोग करते समय विचार करने के लिए कुछ चुनौतियाँ हैं। मुख्य चुनौतियों में से एक यह सुनिश्चित करता है कि मिट्टी पर्याप्त रूप से प्लास्टिक सीट या गीली घास से ढकी हुयी हो, क्योंकि किसी भी अन्तराल या खुलेपन से कीट और बीमारियाँ पनप सकती है। एक और चुनौती यह है कि मिट्टी का सौर्यीकरण केवल वर्ष के गर्म महीनों के दौरान प्रभावी होती है जब सूर्य की किरणें आवश्यक गर्मी और नमी उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त रूप से मौजूद होती है। ठण्डी या आर्द्ध जलवायु में पूरे वर्ष मिट्टी का सौर्यीकरण करना सम्भव नही हो सकता।

इन बाधाओं के बावजूद मृदा सौर्यीकरण पर्यावरण के अनुकूल और टिकाऊ मृदा स्वास्थ्य प्रबन्धन तकनीकों को आगे बढ़ाने के लिए उपयोगी है। मृदा सौर्यीकरण मिट्टी के सामान्य स्वास्थ्य और उर्वरता को बढ़ाने में मदद कर सकता है, जिसके परिणाम स्वरूप रासायनिक कीटनाशकों और उर्वरकों के बजाय सूर्य की प्राकृतिक शक्ति पर भरोसाा करके स्वस्थ और अधिक उत्पादक फसले प्राप्त की जा सकती हैं।

मृदा सौर्यीकरण के लाभ

खरपतवार के बीज, बैक्टीरिया, कवक, नेमेटोड को नियंत्रित करने के लिए मृदा सौर्यीकरण एक गैर रासायनिक विधि है। यह रसायनों के बिना एक कीट प्रबन्धन रणनीति है, जो कुछ परिस्थितियों में काम करती है। मृदा सौर्यीकरण के कुछ लाभ निम्नलिखित है।

- यह मनुष्यों और पर्यावरण के लिए सुरक्षित है। कीटनाशक जो मनुष्यों और पर्यावरण दोनो के लिए खतरनाक हो सकते है का उपयोग सौर्यीकरण के दौरान नही किया जाता है।
- इसे लागू करना अपेक्षाकृत सरल है सौर्यीकरण एक सरल प्रक्रिया है, जिसके लिए विशेषज्ञ या ज्यादा ज्ञान की आवश्यकता

नही होती है।

• यह कीटों की एक विस्तृत श्रृंखला को नियंत्रित करने में प्रभावी हो सकता है क्योंकि सौर्यीकरण कई प्रकार के कीटों के खिलाफ प्रभावी हो सकता है, जिसमें निमेटोड खरपतवार, कवक और बैक्टीरिया के कारण होने वाली बीमारियाँ शामिल हैं।

• सौर्यीकरण मिट्टी की संरचना और उर्वरता में सुधार करता है एवं मिट्टी की संरचना को बढ़ाने में मदद करता है, इसे अधिक छिद्रपूर्ण बन सकता है और पौधों की जड़ो तक पानी और पोषक तत्वों की आसान पहुँच की सुविधा प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त यह मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा को बढ़ाता है।

• सौर्यीकरण कीट नियंत्रण का कम लागत प्रभावी तरीका है। सामान्य तौर पर, सौर्य ऊर्जा अन्य कीट प्रबन्धन रणनीतियों की तुलना में खासकर लम्बी अवधि में कम मँहगी है।

• इसका उपयोग विभिन्न जलवायु में किया जा सकता है। सौर्यीकरण विभिन्न जलवायु में उपयोगी है हालाँकि यह गर्म धूप वाले क्षेत्रों में अच्छा काम कर सकता है और घरेलू क्षेत्रों में सौर्य ऊर्जा लागू की जा सकती है। अत्यधिक उच्च मिट्टी का तापमान सौर्यीकृत क्षेत्र में बचे किसी भी पौधे को मार देगा और पौधो के अवशेष समान तापन में बाधा डालेंगे।

मृदा सौर्यीकरण को प्रभावित करने वाले कारक

क) तापमानः मृदा का सौयीकरण गर्म, धूप वाले जलवायु में सबसे प्रभावी है जहाँ मृदा का तापमान 43-49^{0}C तक पहुँच सकता है ठण्डी जलवायु में मिट्टी का तापमान कीटों और बीमारियों को मारने के लिए आवश्यक स्तर तक नही पहुँच सकता है।

ख) सौर्यीकरण की अवधिः मृदा को सौर्यीकरण सीट से ढ़कने की अवधि प्रक्रिया की प्रभावशीलता में एक महत्वपूर्ण कारक है। सामान्य तौर पर सौर्यीकरण की लम्बी अवधि अधिक प्रभावी होती है हालाँकि इष्टतम अवधि लक्षित किये जाने वाले विशिष्ट कीटों एवं बीमारियों पर निर्भर करेगी।

ग) मृदा की नमी का स्तरः मृदा की सौर्यीकरण प्रभावशीलता को प्रभावित कर सकता है सौर्यीकरण सीट से ढ़कने पर मिट्टी नम होनी चाहिए लेकिन जल भराव नही होना चाहिए।

घ) मिट्टी का प्रकारः विभिन्न प्रकार की मृदा सौर्यीकरण के प्रति अलग-अलग प्रतिक्रिया दे सकती है। उदाहरण के लिए रेतीली मृदा, चिकनी मिट्टी की तुलना में तेजी से गर्म हो सकती है।

ङ) कवर सामग्रीः सौर्यीकरण के लिए उपयोग की जाने वाले कवर सामग्री के प्रकार की प्रक्रिया को प्रभावशीलता से प्रभावित कर सकता है। साफ प्लास्टिक सीट सबसे अधिक उपयोग की जाने वाली कवर सामग्री है। लेकिन अन्य सामग्री जैसे काले प्लास्टिक या कपड़े का भी उपयोग किया जा सकता है।

च) कीट और रोग प्रतिरोधक क्षमताः कुछ कीट और बीमारियाँ दूसरों की तुलना में सौर्यीकरण के प्रति अधिक प्रतिरोधी हो सकती है उदाहरण के लिए मिट्टी में गहरे मौजूद निमेटोड सौर्यीकरण से प्रभावित नही हो सकते हैं।

छ) सौर्य तीव्रताः सूर्य की किरणों की तीव्रता मृदा के सौर्यीकरण की प्रभावशीलता को प्रभावित कर सकती है सामान्य तौर पर सौर्य विकिरण के उच्च स्तर वाले क्षेत्रों में सौर्यीकरण अधिक प्रभावी होता है।

मृदा सौर्यीकरण की प्रक्रिया

सौर्यीकरण की प्रभावशीलता और सौर्यीकरण के दौरान प्राप्त ऊष्मा की खुराक मिट्टी की नमी और बनावट पर निर्भर करती है इसके अतिरिक्त हवा का तापमान (अधिकतम, न्यूनतम और अवधि) ऋतु दिन की लम्बाई, सूर्य के प्रकाश की तीव्रता, हवा की गति और अवधि और प्लास्टिक की रंग मोटाई आदि मृदा सौर्यीकरण को प्रभावित करती है। बाग के पेड़ खेत में बाधा डालते हैं, इसलिए निरन्तर प्लास्टिक फिल्मों का प्रयोग होना चाहिए। प्लास्टिक विछाने वाली मशीनरी का उपयोग हाथों या अर्द्ध यांत्रिक रूप से किया जाना चाहिए। प्लास्टिक की पट्टियाँ पेड़ों के आधारों के चारो ओर काँटा और हाथ से लगाया जाता है और फिर गर्मी प्रतिरोध गोंद या मृदा के संक्रीण बेन्ड के साथ पेड़ की पत्तियों के बीच मशीन से लगायी गयी प्लास्टिक की सीट से जोड़ा जाता है। हालाँकि उपरोक्त विधि इतना प्रभावी नही है कुछ मामलों में प्लास्टिक की चौड़ी पट्टियाँ केवल पेड़ो की पत्तियों के बीच रखी जाती है।

मृदा सौर्यीकरण की कुछ विधियों में बुवाई से पूर्व मृदा पर पॉलीथीन फिल्म की एक परत लगायी जाती है और गर्म मौसम के दौरान 4-6 सप्ताह या इससे अधिक के लिए छोड़ दी जाती है पौधे के बाद के उपचार में पॉलीथीन फिल्म रोपण के बाद लगाया जाता है और यह दो साल तक अपनी जगह पर बनी रह सकती है। मिट्टी में उचित नमी बनाये रखने के लिए प्लास्टिक तिरपाल लगाने से 1-4 दिन पहले बगीचों में सिंचाई की जाती है। प्लास्टिक की दोहरी परते ग्लास हाउस स्थितियों के तहत सौर्य ऊर्जा का अनुकरण कर सकती है। और इसके परिणामस्वरूप मिट्टी में और भी अधिक तापमान बढ़ जायेगा। उपयोग की जाने वाली तकनीक के बावजूद प्लास्टिक हटाने

के बाद सौर्यीकरण का लाभकारी प्रभाव दो साल या इससे अधिक समय तक बना रह सकता है।

मिट्टी की तैयारी

सौर्यीकरण तब सबसे प्रभावी होता है जब पॉलीथीन फिल्म को जितना सम्भव हो उतना करीब रखा जाता है। मृदा सौर्यीकरण के बाद मिट्टी को गर्म होने से बचाने के लिए भूमि की अच्छी तरह से जुताई की जाती है और उसके रोपण के लिये तैयार किया जाता है, जिससे कि खरपतवार के बीज सतह पर आ जायेंगे। भूमि को 15-20 से.मी. तक जुताई करें और मिट्टी के बड़े ढ़ेलो और पौधे के हिस्से को हटा दें। क्योंकि यह प्लास्टिक को हटायेगा या उसमें छेद कर देगा।

वर्ष के गर्म और धूप वाले समय के दौरान मिट्टी को कम से कम चार सप्ताह और अधिमानतः अधिक समय तक ढ़का रहना चाहिये।

सिंचाई

क्यारी तैयार करने के बाद क्षेत्र की सिंचाई करे प्लास्टिक बिछाने से पहले मिट्टी की सिंचाई की जानी चाहिए, मिट्टी के माध्यम से गर्मी के संचरण को बढ़ाने के लिए मिट्टी में नमी की आवश्यकता होती है ओर बीजों को नमी प्रदान करती है क्योंकि सूखे होने पर वह बहुत गर्मी प्रतिरोधी होते है और अधिकांश मिट्टी के कीट सूखी मिट्टी की तुलना में गीली मिट्टी में उच्च तापमान के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। स्प्रिंकलर या ड्रिप लाइन सिंचाई सर्वोत्तम परिणाम देती है मिट्टी को खूब पानी दे ताकि वह गीली रहे।

प्लास्टिक लगाते समय मिट्टी में नमी अधिक होनी चाहिए। गीली मिट्टी सूखी मिट्टी की तुलना में गर्मी का बेहतर संचालन करती है। इसलिए फिल्म लगाने से पहले मिट्टी को गीला करने से उपचार ताप क्षमता बढ़ जायेगी। इसके अलावा अधिकांश कीट, नम मिट्टी में गर्मी के घातक प्रभाव के प्रति अधिक संवेदनशील होते है यदि मिट्टी सूखी हे तो वह निष्क्रिय हो सकते हैं।

टेंचिंग

यह तकनीक जिसका उपयोग मृदा की सौयीकरण की दक्षता बढ़ाने के लिए किया जा सकता है जहाँ मिट्टी के सौर्यीकरण के लिए खाई खोदने की आवश्यकता होती है। उस क्षेत्र के चारो ओर खाईयों की खुदाई की जाती है। आमतौर पर 15-30 से.मी. गहरी खाईयाँ 15-30 से.मी. दूरी पर रखी जाती है उपचारित किये जाने वाले क्षेत्र पर सौर्यीकरण सीट लगाने के बाद खाईयों से निकली मिट्टी को उसके ऊपर डाल दिया जाता है। यह गर्मी बनाये रखने और मिट्टी का तापमान बढ़ाने में सहायता करके सौर्यीकरण प्रक्रिया को अधिक कुशल बनाता है। इसकी सहायता से मिट्टी के तापमान को बढ़ाने में सौर्यीकरण की प्रक्रिया की दक्षता को बढ़ाता है।

निष्कर्ष

मृदा सौर्यीकरण मृदा को स्वस्थ बनाये रखने के लिए एक प्रभावी उपकरण है यह जहरीले रसायनो के उपयोग किये बिना मृदा के स्वास्थ्य की रक्षा करता है यह मृदा सौर्यीकरण मिटटी से फैलने वाले कीटो एवं रोगजनकों को नियंत्रित करने के लिए एक प्रभावी उपकरण है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

परवल में फलन की समस्या एवं निदान

सुधीर दास[1]*, प्रमिला[2], बरुन[3], आनंद प्रसाद राकेश[4], संतोष कुमार सिंह[5] एवं टी. पी. महतो[6]

[1,2एवं3]उद्यान विज्ञान विभाग, [4एवं5]मृदा विज्ञान विभाग, [6]कीट विज्ञान विभाग

पंडित दीनदयाल उपाध्याय उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, पिपराकोठी, पूर्वी चम्पारण

पत्राचारकर्ता: sudhir.das@rpcau.ac.in

परिचय

कद्दू/लौकी वर्गीय सब्जी फसल की खेती के लिए उचित जल-निकास वाली जमीन जिसमे जीवाश्म युक्त हल्की दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिए उपयुक्त होती है। लौकी वर्गीय सब्जीयों में सबसे ज्यादा पौषकीय गुणों जैसे-प्रोटीन (2.0%), वसा (0.3%), कार्बोहाइड्रेट (2.2%), विटामिन ए (153 AE) तथा विटामिन सी (29.0 मिलीग्राम) होती है। इन दिनो परवल खेती लगभग सभी प्रकार के मिट्टी में की जाती है और यह बाजार में वर्ष भर उपलब्ध होता है। इसलिए परवल को 'कद्दू/लौकी वर्गीय सब्जियों का राजा' कहा जाता है। परवल का वैज्ञानिक नाम ट्राइकोसेन्थेस डायोइका है यह कुकुरबिटेसी परिवार का सदस्य है परवल की खेती आर्थिक समृद्धि का आधार है। उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल एवं ओड़िशा में व्यापक पैमाने पर इसकी खेती होती है। यह सही है कि परवल की खेती में कभी-कभी अफलन या कम-फलन की समस्या होती है। जो उत्पादन एवं उत्पादकता को कम करने का प्रमुख घटक होता है।

समस्या: परवल की खेती में उपयुक्त प्रजातियों का समावेश न करना

परवल की खेती में सबसे प्रमुख समस्या अफलन या कभी कभी इसकी खेती में कम फलन का होना है किसानो के लिए बहुत बड़ी चुनौती बन जाती है इसका प्रमुख कारण परवल की खेती में उपयुक्त प्रजातियों का समावेश न करना अफलन की एक आम समस्या है।

सुझाव: भारतीय कृषि शोध संस्थानों एवं कृषि विश्वविद्यालयों से परवल की अनेक उन्नतिशील प्रजातियों का विकास किया गया है, जिनका विवरण नीचे दिया गया है। किसान भाइयों को खेती में इन्ही प्रजातियों का प्रयोग करना चाहिए।

काशी अलंकार: काशी अलंकार प्रजाति का विकास भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी से किया गया है। इसके फल लम्बे मुलायम एवं हल्के रंग के होते हैं। फलों में बीज की मात्रा कम एवं गुदा ज्यादा होता है। औसत उपज 30.0 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति मिठाई बनाने के लिए भी उपयुक्त है। यह प्रजाति बिहार, उत्तर प्रदेश, ओड़िशा एवं पश्चिम बंगाल में ज्यादा प्रचलित है।

काशी सुफल: इस प्रजाति का विकास भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी से किया गया है। इस प्रजाति के फलों में हल्की धारियाँ पायी जाती हैं। फल मोटे व पतले छिलके वाले होते हैं। फलों में गूदा की मात्रा ज्यादा एवं बीज कम होता है। यह किस्म दूर के बाजारों में बेचने के लिए उत्तम है। इसकी औसत उपज 31.0 टन प्रति हेक्टेयर है।

स्वर्ण अलौकिक: इस प्रजाति का विकास हॉर्टिकल्चर एण्ड एग्रो फॉरेस्ट्री रिसर्च प्रोग्राम, राँची (झारखण्ड) से किया गया है। इसके फल हल्के हरे रंग के और नीचे की तरफ नुकीले होते हैं। फलों की लम्बाई 5.0-8.0 सेन्टीमीटर होती है एवं इसमें लगने वाले फल ठोस, पतले, छिलके वाले तथा मुलायम होते हैं। यह प्रजाति भी मिठाई बनाने के लिए उपयुक्त होता है। मचान पर खेती करने से इसकी औसत उपज 23.0-28.0

टन प्रति हेक्टेयर होता है।

स्वर्ण रेखाः यह ओज पूर्ण प्रजाति है, जिसका विकास हॉर्टिकल्चर एण्ड एग्रो फॉरेस्ट्री रिसर्च प्रोग्राम, राँची (झारखण्ड) से किया गया है। इसके फल हल्के हरे सफेद, पट्टीदार, 8.0-10.0 सेन्टीमीटर लम्बे व दोनो किनारे पर नुकीले होते हैं। इसकी औसत उपज 20.0-23.0 टन प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति बिहार, उत्तर प्रदेश, ओड़िशा एवं पश्चिम बंगाल में ज्यादा प्रचलित है।

सी. एच. ई. एस. संकर-1: यह ओज पूर्ण संकर प्रजाति है, जिसका विकास हॉर्टिकल्चर एण्ड एग्रो फॉरेस्ट्री रिसर्च प्रोग्राम, राँची (झारखण्ड) से किया गया है, जिसके फल ठोस हरे पट्टीदार एवं 30.0-350ग्राम वजन के होते हैं। इसकी औसत उपज 28.0-32.0 प्रति टन हेक्टेयर है। इस किस्म में फल मक्खी का प्रकोप नहीं होता है।

सी. एच. ई. एस. संकर-2: यह ओज पूर्ण संकर प्रजाति है, जिसका विकास हॉर्टिकल्चर एण्ड एग्रो फॉरेस्ट्री रिसर्च प्रोग्राम, राँची (झारखण्ड) से किया गया है। यह संकर किस्म अधिक उत्पादक (30. 0-40.0 टन प्रति हेक्टेयर) है। इसके फल पट्टीदार हरे रंग के एवं प्रत्येक फल का भार 25.0-30. 0 ग्राम का होता है।

राजेन्द्र परवल 1: इस प्रजाति का विकास राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, बिहार से किया गया है। इसके फल बड़े एवं पट्टीदार हरे रंग के होते हैं। इसकी औसत उपज 14.0-15.0 टन प्रति हेक्टेयर है।

राजेन्द्र परवल 2: इस प्रजाति का विकास राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, बिहार से किया गया है। इसके फल बड़े गहरे हरे रंग के तथा सफेद पट्टीदार होते हैं। इसकी खेती बिहार एवं उत्तर प्रदेश के मैदानी एवं नदियों के किनारे की जा सकती है। इसकी औसत उपज 15.0-17.0 टन प्रति हेक्टेयर है।

फैजाबाद परवल 1: परवल की इस प्रजाति का विकास नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, फैजाबाद से किया गया है। इसके फल आकर्षक एवं हरे रंग के होते हैं। इसकी खेती उत्तर प्रदेश एवं बिहार में की जाती है। इसकी औसत उपज 15.0-17.0 टन प्रति हेक्टेयर है।

फैजाबाद परवल 3: परवल की इस प्रजाति का विकास नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, फैजाबाद से किया गया है। इसके तकुआनुमा हरे रंग के तथा कम पट्टीदार होते हैं। इसकी औसत उपज 12.5-15.0 टन प्रति हेक्टेयर है। यह पूर्वी एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में खेती के लिए संस्तुत की गयी है।

फैजाबाद परवल 4: परवल की इस प्रजाति का विकास नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, फैजाबाद से किया गया है। इसके फल हल्के हरे तकुआनुमा तथा किनारे पर पतले होते हैं। यह किस्मे मचान बनाकर खेती करने के लिये उत्तम है। इसकी औसत उपज 10.0-15.0 टन प्रति हेक्टेयर है।

समस्याः पौध प्रसारण सामग्री की सही जानकारी का अभाव

परवल में नर व मादा पौधे अलग-अलग बनते हैं और आपसी परागण से फल का विकास होता है। अक्सर सब्जी उत्पादक पहले से लगे परवल के खेत में जाते हैं और जमाव लिये पौध दिख जाने पर जड़ सहित खुदाई कर मुख्य खेत में रोपण कर देते हैं। अक्सर ऐसा होता है कि पके बीज जमीन पर गिरकर जम जाते हैं और नये पौध बनाते हैं जिसे किसान भाई प्रसारण के लिए प्रयोग करते हैं, जिसमे नर पौध ज्यादा 80-85 प्रतिशत व मादा पौध कम (15-20 प्रतिशत) होते हैं। बीज से तैयार पौध ज्यादा 80-85 प्रतिशत व मादा पौध कम (15-20 प्रतिशत) होते है। बीज से तैयार पौध कमजोर होता है पुष्पन (नर व मादा) का देर से असंन्तुलित मात्रा में अलग-अलग समय पर विकसित होते हैं अतः फलन कम होती है।

सुझावः पौध प्रसारण सामग्री का चुनाव केवल वांक्षित प्रजाति के मातृ पौधे (नर व मादा) के वर्षीय भाग से करें। बीज द्वारा पौध प्रसारण न करें और नहीं खेत में गिरे बीज से उगे पौधों को मुख्य खेत में रोपण करें। अच्छा होगा कि फलन के समय ही नर व मादा पौध पहचान कर उसे अलग चिन्ह लगाकर अलग कर लें।

समस्याः खेत में नर व मादा पौधों का असन्तुलन होना

सब्जी उत्पादक परवल की खेती तो करते हैं लेकिन खेत में नर व मादा पौधों की आपसी अनुपात नहीं रखते है। कभी-कभी तो सब्जी उत्पादक अधिक उपज की आशा से खेत में केवल मादा पौधों का ही रोपण करते है, जिससे पौधों पर केवल मादा पुष्प बनते हैं लेकिन नर पुष्प द्वारा मिलने वाला परागकण नहीं मिलता है। परागण के अभाव में मादा पुष्प में अण्डज अल्प विकसित या छोटा फल बनता है, जो बाद में पीला व भूरा होकर गिर जाता है, जिससे अफलन सामान्य बात हो जाती है।

सुझावः परवल के खेत में पौध स्थापन (रोपण) के समय नर व मादा का अनुपात 1:10 का अवश्य रखें। ध्यान रहे कि नर पौध का विन्यास इस प्रकार हो कि प्रत्येक मादा पौध पर विकसित हो रहे पुष्प के पास नर भी विकसित हों।

समस्याः पौधों में अधिक वानस्पतिक वृद्धि का होना

आजकल परवल उत्पादकों के बीच अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए अधिक से अधिक कृषि रसायनों एवं पादप वृद्धि नियामकों के प्रयोग करने की होड़ लगी रहती है। इसके असंन्तुलित एवं अधिक प्रयोग, पौधों में बेतहाशा वानस्पतिक वृद्धि में सहयोग करता है, अतः पौधों में कार्बोहाइड्रेट नत्रजन (सी. एन.) अनुपात बिगड़ जाता है, परिणामस्वरूप अफलन की समस्या बन जाती है।

सुझावः परवल का पौधा एक बार लगाने के बाद लगातार 3-4 वर्षो तक एक ही स्थान पर लगा रहता है जिससे पौध रोपण के समय प्रत्येक थाले में 4-5 किलोग्राम गोबर की सड़ी खाद या वर्मी कम्पोस्ट, 500 ग्राम नीम की खली 100 ग्राम डी. ए. पी. तथा 200 ग्राम म्यूरेट आफ पोटाश का प्रयोग करें। परीक्षण में पाया गया कि परवल में जैविक खादों व कार्बनिक पलवार के प्रयोग से गुणवत्तायुक्त अधिक उपज मिलती है।

समस्याः अधिक पौधे का स्थापन

परवल की खेती करने वाले किसान भाई आवश्यकता से अधिक पौधों की स्थापना करते हैं यानि खेत में घना पौध लगाते हैं अतः प्रत्येक पौधे बढ़कर एक दूसरे पर चढ़ जाती है, जिससे जो समस्या उत्पन्न होती है अफलन के लिए जिम्मेदार है।

• अगर पौधों में वनस्पतिक वृद्धि ज्यादा है तो कार्बन, नाइट्रोजन अनुपात असन्तुलित हो जाता है, जिससे पुष्प कम बनते है वे कम फलन के लिए जिम्मेदार है।

• खेत में अधिक पौघ (घने पौध) स्थापन पर ज्यादा पुष्प विकसित होंगें एवं कुल उपज ज्यादा मिलेगी ऐसी धारणा उत्पादकों में होती है। यह परीक्षण में पाया गया है कि पौधों में बने केवल ऊपर के ही पुष्प कीटों से परागित होते है, जिस पर फल बनते है लेकिन लता के नीचे पुष्प बनने पर परागण के अभाव में फल नहीं बनते है पौध ज्यादा घना होने पर जमीन के नीचे से गर्मी निकली है, जो विकसित हो रहे पुष्पों को गिरने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

सुझावः वॉछित दूरी पर परवल के पौधो का रोपण करना चाहिए। अतः कतार से कतार 1.5 मीटर तथा पौध से पौध की दूरी 1.0-1.0 मीटर रखना चाहिए। खेत में प्रति हेक्टेयर केवल 6000 मादा तथा 650 नर पौधों को ही लगाना चाहिए, जिसे 30x30x30 से.मी. के गड्ढे में लगाना उत्तम रहता है। ट्रेलीज पर पौध लगाने की दशा में 1.0×1.0 मीटर की दूरी पर लगाकर ट्रेली रस्सी (नारियल, प्लास्टिक, जुट) आदि की सहायता से चढ़ा दे।

समस्याः पुष्पों में परागण का न होना

परवल में परागण समस्या भी अफलन के लिए जिम्मेदार है। अक्सर सब्जी उत्पादक हानिकारक कीट रसायनों का प्रयोग फलन के समय करते हैं, जिससे परागण करने वाले कीट भी मर जाते हैं, जिससे फलन कम होती है। कभी-कभी वतिकाग्र पर चूर्ण या पाउडर जमा हो जाता है, जिससे परागकण उपलब्ध होने के बाद भी परागकण नलिका विकसित नहीं होती है, परिणामतः अफलन की समस्या हो जाती है।

सुझावः परवल में उचित सांद्रता वाले कीटनाशकों जैसे इमिडाक्लोप्रिड की 1.0 मिली लीटर प्रति लीटर पानी में डालकर प्रयोग करना चाहिए एवं यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पाउडर वाले कृषि रसायन का प्रयोग कदापि न करें। पादप वृद्धि नियामकों जैसे फ्लानोफेक्स की 200 पी.पी.एम. मात्रा का ही प्रयोग करना चाहिए। इससे परागण नलिका का समुचित विकास होगा और सुडौल फल बनेगें। कीटनाशकों प्रयोग हमेशा सुबह 8-10 प्रातः के बीच करना चाहिए क्योंकि कि परवल के फूल सायंकाल के समय पुष्पित होते हैं।

समस्याः फलों की तुड़ाई करते समय लता का बेधित (पंक्चर) होना

अक्सर परवल की खेती मैदानी व नदियों के किनारे जमीन पर फैलाकर करते हैं, जिससे फल की तुड़ाई करते समय लताओं को दबा देते हैं जिससे पौध के लताये बेधित (पंक्चर) हो जाते हैं और तना का रस भी दबने से बाहर आ जाता है। अतः पोषक तत्वों का संवहन रूक जाता है तथा दबे भाग पर द्वितीयक रोग कारक संक्रमण करते हैं, जिससे अफलन हो जाती है।

सुझावः यही सही है कि नदियों के किनारे तथा ग्रीष्म काल में पौधों को ट्रेलीज पर चढ़ाया नहीं जा सकता है लेकिन मैदानी भागों में पौध रोपण कर वर्षाकाल में फलन ट्रेलीज पर पौध चढ़ाकर सुगमता से प्राप्त किया जा सकता है। इससे प्रत्येक पुष्प में समुचित परागण तथा सुगमता पूर्वक फल को तोड़ा जा सकता है।

समस्याः सूत्रकृमि का प्रकोप

परवल में अफलन के लिए सूत्रकृमि का प्रकोप भी ज्यादा जिम्मेदार है। परवल की खेती करने वाले किसान दूसरे खेत से जड़ युक्त पौध को लाकर लगाते हैं। अक्सर जड़ों में सूत्रकृमि के अण्डे चिपके रहते हैं। जड़ रोपण के बाद पौध तो विकसित होता है लेकिन बाद में कमजोर पड़ जाता है और पुष्पन किये

पौध पर फल कमजोर या नहीं बनते हैं।

सुझावः पहली बार पौध रोपण एवं प्रत्येक वर्ष तना कर्तन करते समय प्रत्येक गड्ढे में 200-250 ग्राम नीम की खली तथा 15 ग्राम फ्यूराड़ान का प्रयोग करना चाहिए। अच्छा होगा कि रोपण के समय या पूर्व सभी लताओं को 1000 पी. पी. एम. कुनोफोस के घोल में 4-6 घण्टे तक डुबोकर लगायें।

समस्याः फल व तना छेदक का प्रकोप

परवल में लगने वाले हानिकारक कीटों में फल मक्खी व तना छेदक प्रमुख कीट है, जिससे परवल में कम फल लगते हैं। तना छेदक कीट पौधे के मुख्य तना में छेद कर देता है, जिससे जड़ों से प्राप्त पोषक तत्वों का अग्र भागों तक संवहन नहीं होता है और तना फूल जाता है। अतः फलन कम हो जाती है। इसी प्रकार फल मक्खी परागण के पूर्व या परागण के बाद कोमल फलों में छेद कर देती है और बहुत छोटी अवस्था में ही फल भूरे होकर मर जाते हैं।

सुझावः तना छेदक कीट को नियंत्रण करने के लिए इंडोक्साकर्ब प्रवाही कीटनाशक का 1.0 मिलीग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर 20 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए। फल मक्खी के बचाव के लिए इमिडाक्लेप्रिड दवा 1.0 मिलीग्राम को 2 लीटर पानी मे घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

निष्कर्ष

परवल में फलन की समस्या का मुख्य कारण अपर्याप्त परागण, नर-मादा पौधों का असंतुलन, पर्यावरणीय असंतुलन और पोषक तत्वों की कमी है। सही पौधों का अनुपात, संतुलित उर्वरक प्रबन्धन, उचित एवं समय से सिंचाई, प्राकृतिक परागणकर्त्ताओं को बढ़ावा देना और वृद्धि नियंत्रकों का उपयोग करने से परवल के फसल में सुधार किया जा सकता है। अतः परवल प्रभेद का सही चुनाव, पौधे प्रसारण सामाग्री का सही जानकारी, खेत में नर-मादा का सही संतुलन, संतुलित उर्वरक प्रबन्धन इत्यादि बिन्दुओं पर ध्यान रखकर परवल की खेती करने से परवल में अफलन की समस्या से निदान किया जा सकता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

मैंगोस्टीन की खेती के लाभ और उपयोग

शिल्पा*, रिम्पिका एवं अंकिता सूद

डॉ वाईएस परमार, बागवानी और वानिकी महाविद्यालय, थुनाग, मंडी, हिमाचल प्रदेश

पत्राचारकर्ता: shilpananglia1990@gmail.com

परिचय

भारत में किसान लगातार उन्नत उपज पाने वाली खेती कर रहे हैं। मैंगोस्टीन (*गार्सिनिया मैंगोस्टाना*) की खेती ऐसी ही फसलों में से एक है। यह फल पोषक तत्वों से भरा होता है। मैंगोस्टीन, जिसे बैंगनी मैंगोस्टीन भी कहा जाता है। पिरामिड जैसा मुकुट वाला एक धीमी गति से बढ़ने वाला उष्णकटिबंधीय पेड़ है। यह एक विदेशी सदाबहार पेड़ है, जिसकी प्रशंसा खट्टे-मीठे स्वाद वाले खूबसूरत रसीले और बैंगनी फलों के लिए दुनिया भर में की जाती है। भारत में इसकी खेती केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु और महाराष्ट्र के तटीय क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जाती है। इसमें एंटी ऑक्सीडेंट, एंटी बैक्टीरियल, एंटी फंगल गुण होते हैं। यह कई बीमारियों में लाभकारी है। यह स्तन कैंसर, लीवर कैंसर और ल्यूकेमिया जैसी बीमारियों से बचाव में काम आता है। इसके स्वादिष्ट एवं पौष्टिक गुणों के कारण लोग इसे खाना पसंद करते हैं। लोगों की पसंद के कारण ही मैंगोस्टीन बाजार में अच्छे भाव पर बिक जाता है।

मैंगोस्टीन वृक्ष

संपूर्ण फल और क्षैतिज अनुप्रस्थकाट

पौष्टिक महत्व

एंडोकार्प: फल का हल्का स्वाद वाला सफेद भाग-खाने योग्य होता है। लेकिन इसकी पोषण सामग्री मामूली होती है, क्योंकि विश्लेषण किए गए सभी पोषक तत्व दैनिक मूल्य के कम प्रतिशत पर हैं। इसमें पाए जाने वाले पोषक तत्व, फाइबर और एंटी-ऑक्सीडेंट कई प्रकार से स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं। इस फल के सेवन से इम्यूनिटी को तो मजबूती मिलती ही है, साथ ही इसमें कई ऐसे यौगिक मौजूद होते हैं, जो कैंसर, मोटापा और मधुमेह (डायबिटीज) जैसी बीमारियों में काफी लाभदायक हो सकते हैं। मैंगोस्टीन में विटामिन-सी भी अच्छी मात्रा में पाया जाता है, जो स्वास्थ्य प्रतिरक्षा प्रणाली के लिए महत्वपूर्ण है। दरअसल, विटामिन-सी एंटी-ऑक्सीडेंट गुणों से भरपूर होता है और यह प्रतिरक्षा कोशिकाओं को मजबूती देने का काम करते है। इसका रोजाना सेवन फायदे मंद हो सकता है।

एक-कप डिब्बा बंद, सूखे मैंगोस्टीन का पोषण संबंधी विवरण इस प्रकार है

143 कैलोरी	
कार्बोहाइड्रेट	35 ग्राम
फाइबर	3.5 ग्राम
वसा	1 ग्राम
प्रोटीन	1 ग्राम
विटामिन सा	5.7 मिलीग्राम
विटामिन बी9	सुझाये गए दैनिक सेवन का 15%
विटामिन बी1	सुझाये गए दैनिक सेवन का 7%
विटामिन बी2	सुझाये गए दैनिक सेवन का 6%
कैल्शियम	23.5 मिलीग्राम
मैंगनीज	सुझाये गए दैनिक सेवन का 10%
पोटैशियम	94.1 मिलीग्राम
कॉपर	सुझाये गए दैनिक सेवन का 7%
मैग्नीशियम	सुझाये गए दैनिक सेवन का 6%

जलवायु

मैंगोस्टीन में गर्म, नमीयुक्त और भू-मध्य रेखीय जल वायु जरूरी होती है। इस फल को न अधिक पानी, न अधिक गर्मी और न ही अधिक सर्दी की जरूरत होती है। यह फल उष्णकटिबंधीय है और इसके लिए मध्यम जलवायु की आवश्यकता

होती है। इसे उच्च आर्द्रता और औसत तापमान की आवश्यकता होती है, जो 25-35 डिग्री सेल्सियस के बीच होता है। मैंगोस्टीन छाया में भी पनपता हैं। पूर्ण विकसित पेड़ों के विपरीत, युवा पौधे सीधे सूर्य के प्रकाश में जीवित रहने में सक्षम नहीं हो सकते हैं। इसलिए पौधों को छाया में या ऐसे स्थान पर रखें जहाँ उन्हें अप्रत्यक्ष या फ़िल्टर की हुई धूप मिलती हो। औसतन, पौधों को हर दिन 13 घंटे तक सूरज की रोशनी की आवश्यकता होती है।

मिट्टी

मैंगोस्टीन के पौधों की उपज के लिए सही मिट्टी का चयन करना बेहद जरूरी होता है। रेतीली, दोमट मिट्टी मैंगोस्टीन की उपज के लिए बेहतर होती है। ध्यान रखें कि इस तरह की मिटटी में कार्बनिक प्रदार्थों का अधिक होना जरूरी होता है। अच्छी उपज के लिए मिटटी के पीएच मान का भी ध्यान रखना चाहिए। रेतीली दोमट व अच्छी मात्रा में कार्बनिक पदार्थ वाली उपजाऊ मिट्टी, मैंगोस्टीन उगाने के लिए उपयुक्त होते है। पौधे थोड़े अम्लीय पीएच वाली अच्छी जल निकासी वाली मिट्टी में और भी बेहतर तरीके से उगते हैं। 5.5 से 6.5 की पीएच मात्रा उपयुक्त होता है।

खेत की तैयारी

रोपण से पहले खेत को खरपतवार हटाकर और जैविक खाद डालकर अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिए। आजकल बाजार में खराब बीजों का भी चलन है। विक्रेता सस्ते बीजों को ही महंगे दामों पर बेच देते हैं। इससे उपज अच्छी नहीं हो पाती है। यदि बीजों को लेकर जरा भी संशय है, तो नर्सरी से पौधा खरीद कर लगाना चाहिए। 12 इंच तक ऊँचा होने में पौधे को दो साल लग जाते हैं। इसी समय पौधों को नर्सरी से लाकर खेत में लगाया जा सकता है। 7 से 8 साल बाद मैंगोस्टीन फल देना शुरू करता है। मैंगोस्टीन पहली बार फल जुलाई से अक्टूबर में देता है। उसके पश्चात अप्रैल से जून महीने के मानसून मौसम के दौरान इसकी फलन प्राप्त होने लगती है किसान इसी फल को बचेकर ही लाखों रुपये कमाते हैं।

मैंगोस्टीन के पेड़ों को बीज, ग्राफ्टिंग या बडिंग के माध्यम से प्रसारित किया जा सकता है। हालाँकि, बीज प्रसार अपनी सरलता और लागत-प्रभावशीलता के कारण किसानों द्वारा उपयोग की जाने वाली सबसे आम विधि है। फल से बीज निकालने के तुरंत बाद बीज बोना चाहिए, क्योंकि वे जल्दी ही अपनी व्यवहार्यता खो देते हैं।

बुवाई

मैंगोस्टीन के पेड़ आमतौर पर मानसून के मौसम के दौरान, विशेषकर जून या जुलाई में लगाए जाते हैं। उचित वृद्धि और विकास के लिए पेड़ों के बीच की दूरी लगभग 8 से 10 मीटर होनी चाहिए। 60 से.मी. x 60 से.मी. x 60 से.मी. आकार के गड्ढे खोदना चाहिए और उन्हें अच्छी तरह से विघटित कार्बनिक पदार्थ के साथ मिश्रित ऊपरी मिट्टी से भर दिया जाता है।

मैंगोस्टीन पेड़ों की स्वस्थ वृद्धि और विकास के लिए उचित

उर्वरक आवश्यक है। पेड़ के विकास के विभिन्न चरणों के दौरान जैविक खाद और एनपीके (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम) की संतुलित खुराक दी जानी चाहिए। सूक्ष्म पोषक तत्वों के साथ पत्तियों पर छिड़काव भी फायदेमंद होता है।

सिंचाई

मैंगोस्टीन के पेड़ों को नियमित और पर्याप्त पानी की आवश्यकता होती है, खास कर शुष्क मौसम के दौरान इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए का मिट्टी में नमी बनाए रखने के लिए नियमित अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। पेड़ के आधार के चारों ओर मल्चिंग करने से नमी बनाए रखने और खरपतवार की वृद्धि को रोकने में मदद मिलती है। अगर बीज से मैंगोस्टीन उगा रहे हैं, तो मिट्टी को नम रखें, क्योंकि युवा पौधों को निरंतर नमी की आवश्यकता होती है। पौधे को पानी देते समय ध्यान रखने योग्य एक और बात यह है कि केवल ताजे पानी का उपयोग करें। खारा पानी पौधे की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।

कटाई

प्रत्यारोपण के बाद पेड़ों को फल देने में 7-9 साल तक का समय लग सकता है। भारत में आमतौर पर फलने के दो मौसम होते हैं। पहला फलन जुलाई से अक्टूबर यानी मानसून के मौसम में होता है, और दूसरा अप्रैल-जून के महीनों के दौरान होता है। मैंगोस्टीन फलों की कटाई तब की जाती है जब वे पूर्ण परिपक्वता तक पहुँच जाते हैं, जिनका आम तौर पर फलों के रंग में बदलाव से संकेत मिलता है।

मैंगोस्टीन फल तब कटाई के लिए तैयार होता है जब यह लाल-बैंगनी रंग का हो जाता है, मांसल के खंड एक्सोकार्प से आसानी से अलग हो जाते हैं और बाहरी एक्सोकार्प में कोई लेटेक्स नहीं रहता है। फल को हाथ से तोड़ा जाता है और इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह जमीन पर न गिरे।

छाँटई

पेड़ के वांछित आकार को बनाए रखने, बेहतर वायु परिसंचरण को बढ़ावा देने और आसान कटाई की सुविधा के लिए छाँटई करना आवश्यक है। शुष्क मौसम के दौरान हर साल पेड़ की छाँटई करने श्रेयस्कर होता है। एक केंद्रीय लीडर प्रणाली के साथ युवा पेड़ों को ट्रेनिंग करने से एक मजबूत ढाँचा स्थापित करने में मदद मिलती है।

रोग और किट नियंत्रण

मैंगोस्टीन के पेड़ फल मक्खियों, स्केल्स और एन्थ्रेक्नोज सहित विभिन्न कीटों और रोग के लिए अति संवेदनशील होते हैं। प्रभावी कीट और रोग प्रबंधन के लिए नियमित निगरानी और उचित कीट नाशकों और कवक नाशी का समय पर उपयोग करना महत्वपूर्ण होता है। एकीकृत कीट प्रबंधन प्रथाओं का पालन किया जाना चाहिए।

मैंगोस्टीन की खेती में चुनौतियाँ

क) धीमी वृद्धिः मैंगोस्टीन एक धीमी गति से बढ़ने वाला पेड़ है, जो बड़े पैमाने पर व्यावसायिक खेती के लिए बाधा बन सकता है। फल लगने में कई साल लगते हैं और फल को पूर्ण उत्पादन तक पहुँचने में और भी अधिक समय लगता है।

ख) जलवायु के प्रति संवेदनशीलताः जबकि मैंगोस्टीन उष्ण कटिबंधीय जलवायु में पनपता है, यह सूखे या लंबे समय तक भारी वर्षा जैसी चरम मौसम स्थितियों के प्रति संवेदनशील होता है, जो फलों की उपज को प्रभावित करता है।

ग) उच्च लागतः धीमी वृद्धि और श्रम-गहन खेती के कारण, मैंगोस्टीन अक्सर अन्य उष्ण कटिबंधीय फलों की तुलना में अधिक महँगा होता है। जो बाजारों में इसकी उपलब्धता और पहुँच को सीमित कर सकता है।

निष्कर्ष

मैंगोस्टीन अपने उत्कृष्ट स्वादिष्ट स्वाद और स्वास्थ्य लाभों की प्रभावशाली श्रृंखला के लिए वास्तव में एक उल्लेखनीय फल है। यद्यपि, इसकी विशिष्ट जलवायु और मिट्टी की ज़रूरतों के कारण इस की खेती चुनौतीपूर्ण हो सकती है। हालाँकि, जब इसे सही परिस्थितियों में उगाया जाता है, तो यह व्यक्तिगत उपभोग और व्यावसायिक उत्पादन दोनों के लिए अत्यधिक फायदेमंद फल हो सकता है।

संदर्भ

- Simon PW 1996). “Plant Pigments for Color and Nutrition”. US Department of Agriculture, republished from Hort Science 32(1):12–13.
- Crown I (2014). Science: Mangosteen information”. *Mangosteen.com*. The mangosteen website.
- Yaacob O, Tindall HD (1995). Mangosteen cultivation. Rome: Food and Agriculture Organization of the United Nations. ISBN 92-5-103459-1.

❖❖

ISSN No. 2583-3316

किसानों की आय के लिए वरदान है रजनीगंधा की खेती

अजय कुमार, अमित कनौजिया, अजय कुमार सिंह, निकिता मौर्या*, कुमारी अंजली एवं आशीष प्रताप सिंह
पुष्प विज्ञान एवं भूदृश्य निर्माण विभाग, बाँदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बाँदा, उत्तर प्रदेश
पत्राचारकर्ता: nikitamaurya722@gmail.com

परिचय

रजनीगंधा सुगन्धित पौधों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसका वनस्पतिक नाम *पालीएन्थस ट्यूबरोसा* है। यह ऐमेरिलिडेसी परिवार से संबंधित है यह अर्ध सहनशील, केन्द्रीय और पूरे वर्ष फूल देने वाला पौधा है। इसके पुष्प गुच्छे को पानी भरी बोतल में ग्रीष्म काल में 6 से 8 दिन तथा शीतकाल में 10-15 दिन तक आसानी से ताजा रखा जा सकता है। तथा साथ में कमरे का वातावरण भी सुगन्धित बना रहता है। इसके फूल घंटी नुमा सफेद, चमकीले, लगभग 2-5 सेमी. लम्बे एकाकी व दोहरे होते है, जो पुष्प गुच्छे स्पाइक पर चारों तरफ लगे रहते है। एक फूल में 6 परागकेसर होते है। यह अण्डाशय 3 कोष्ठीय व अनेको अण्डकोषों वाला होता है। जिसके बाद में संपुट बनता है।

उत्पत्ति एवं वितरण

रजनीगंधा के उत्पत्ति का स्थान मेक्सिको या दक्षिण अमेरिका है। यह 16वीं शताब्दी के दौरान मेक्सिको से दुनिया के विभिन्न हिस्सों में फैल गया। भारत में इसकी व्यावसायिक खेती मुख्य रूप से मिदनापुर राजाघाट, कोलाघाट और उड़ीसा में जोरहट, राजस्थान में उदयपुर, अजमेर और जयपुर, अहमदाबाद के अहमदनगर, गुजराज में नौसारी और हरियाणा में गुड़गाव और फरीदाबाद, पंजाब में लुधियाना और पटियाला, उत्तर प्रदेश में दिल्ली में कर रहे है। रजनीगंधा की खेती मुख्यतः चीन, मिस्त्र, फ्रांस, इटली, इजराइल, दक्षिण अफ्रीका, न्यूजिलैण्ड, स्पेन, श्रीलंका, उत्तरी कैरोलिना, अमेरिका और कई देशों में बडे पैमाने पर की जाती है।

गुण

शल्क कंदों को सुजाक के निदान में उपयोग किया जाता है। इसके फूलों में मूत्रल गुण पाये जाते हैं तथा इसे वमन कराने के लिए उपयोग किया जाता है। इसके फूल बाजार में भी बेचे जाते हैं। फ्रांस में राशिभूत से एब्सल्यूट तैयार किया जाता है जिसे आमतौर से मोरक्को से आयात किया जाता है। इसके अलावा रजनीगंधा के फूलों से प्राप्त तेल में अन्य औषधीय गुण भी होते है जैसे अरोमाथेरेपी में उपयोगी, मतली और सिरदर्द का इलाज करता है। ये रक्त परिसंचरण में सुधार करता है, जो श्वसन प्रणाली में मदद करता है तथा नींद को बढ़ावा देता है।

उपयोग

रजनीगंधा के फूलो से तेल निकाला जाता है, जिसका भारतीय बाजारों में और विश्व में भारी माँग है और आज भी बाजार में अपना विशेष स्थान रखता है। इसका उपयोग खाने की मिठाइयों, सौन्दर्य प्रसाधनों बालो तथा दवाओं में होता है। इसके तेल में जिरेनियाल, नेराल, बेन्जिल एल्कोहल, मेथिल बेन्जोएट पाये जाते है। इसके खुले फूलों को गजरा, बेनी एवं अन्य सजावट के लिये भी प्रयोग किया जाता है। इसको उपरोक्त कार्यो के साथ-साथ ग्रह वाटिका की क्यारियों तथा गमलों में भी उगाया जाता है।

रजनीगंधा की किस्मे

रजनीगंधा की किस्मों का वर्गीकरण उसमे पायी जाने वाली पखुंड़ियों की कतारों की संख्या के आधार पर किया जाता है। जितनी पखुंड़ियों की कतारे फूल में होगी उसी क्रम में उसको वर्गीक्रत किया जाता है। रजनीगंधा को तीन प्रमुख किस्मों में वर्गीकृत किया गया है

अ) एक रंग वाली किस्मे

इस किस्म में रजनीगंधा के फूल एक ही रंग के उगते है तथा इसका उपयोह वर्तमान समय में व्यावसायिक रूप से अधिक हो रहा है।

- **सिंगल टाइप:** इसके फूल में पंखुड़ियों की एक कतार होती

है। इसके फूल अत्यधिक सुगंन्धित होते है। इसका अधिक उत्पादन तमिलनाडु मे होता है। यहाँ पर इसका प्रयोग माला बनाने के साथ-साथ तेल निकालने के लिए भी किया जाता है। इस किस्म में तेल की मात्रा अधिक होती है।

• **डबल टाईपः** इस किस्म के फूल में पंखुडियों की 3 से अधिक कतारे पायी जाती है। इसके फूलों का रंग गुलाबी से लेकर सफेद होता है। इसके फूलों का प्रयोग मुख्य रूप से कटे फूलों के रूप में किया जाता है। इस किस्म के फूलों में सिंग्ल किस्म के अपेक्षा कम सुगन्ध होती है।

• **मध्यम टाईपः** इस किस्म के सफेद रंग के फूलों में दो या तीन पंखुड़ियाँ की कतारे पायी जाती है तथा कुछ किस्मों के फूल कली अवस्था में हल्के लाल अथवा गुलाबी रंग के भी पाये जाते है। इस किस्म के फूलों का प्रयोग तेल और खुले एवं कटे फूल के रूप में किया जाता है।

ब) दो रंगो की पत्तियों वाली किस्मे

राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा दो किस्मों गामा किरणों का प्रयोग से विकसित की गयी है।

• **स्वर्ण रेखाः** इस किस्म पर डबल टाईप के फूल आते है तथा पत्तियाँ दो रंग की होती है। पत्तियों के किनारे हरे एवं सुनहरे रंग के होते है।

• **रजत रेखाः** इस किस्म पर सिंगल टाईप के फूल आते है। इसकी पत्तियाँ भी दो रंगी होती है। पत्तियों के मध्यम मे ंचमकीली सफेद हरी होने के कारण पौधा देखने में सुन्दर लगता है।

स) भारतीय उद्यान अनुसंधान संस्थान बैंगलोर द्वारा विकसित संकर किस्मे

श्रीनगर, प्रज्वल, श्रृंगार, सुवासिनी, वैभव, अर्का निरान्तारा सुगंध उद्योग में इस पौधे के आर्थिक महत्व पर विचार करते हुए राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान, लखनऊ के बंथरा अनुसंधान केन्द्र पर इसकी खेती पर प्रयोग किये गये हैं।

• **खेत की तैयारीः** खेत का चुनाव करने के बाद उसे समतल कर ले फिर एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से तथा 2 से 3 बार देशी हल से जुताई करके पाटा चलाकर मिट्टी को भूरभरा बना ले। चूँकि ये कन्द वाली फसल है। इसलिए कन्द के समुचित विकास हेतु खेत की तैयारी ठीक ढ़ंग से होनी चाहिए और मिट्टी का पीएच मान 6.5 से 7.5 हो तो अच्छी मानी जाती है। इसकी व्यावसायिक खेती क्षारीय से अम्लीय भूमि में भी की जा सकती है। भूमि 45 सेमी. की गहराई तक भुरभुरी उत्तम जल निकास वाली कार्बनिक पदार्थ एवं अन्य पोषक तत्वों की उचित मात्रा युक्त होनी चाहिए।

• **रजनीगंधा की अच्छी फसल के लिए भूमिः**रजनीगंधा की अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए भूमि का चुनाव करते समय दो बातों पर सबसे पहले ध्यान देना चाहिए। पहला खेत छायादार जगह में न हो अर्थात सूर्य का पूर्ण प्रकाश मिलता हो और दूसरा जल निकास का उचित प्रबन्धन हो। यद्यपि इसे लगभग हर तरह की मिट्टी में उगाया जा सकता है। परन्तु बलुआ दोमट, दोमट या मटियार दोमट मिट्टी उपयोक्त होती है।

• **जलवायुः** भारत वर्ष में रजनीगंधा की खेती गर्म व नर्म जलवायु में की जाती है। इसे उगाने के लिए औसत तापमान 20 से 35^{0} सेन्टीग्रेड उपयोक्त होता है इसकी अच्छी वृद्धि के लिए अधिक आद्रता के साथ-साथ लगभग 30^{0} सेन्टीग्रेड तापमान बहुत अच्छा होता है। नमी अथवा आद्रता एवं तापमान ही रजनीगंधा के उत्पादन को घटाने अथवा बढ़ाने वाले दो प्रमुख घटक है। तापक्रम 40^{0} सेन्टीग्रेड से अधिक होने से स्पाइक की लम्बाई एवं गुणवत्ता घट जाती है। इसी तरह तापक्रम बहुत कम होने पर पाला से पौधे व फूल नष्ट हो जाते है। इसीलिए रजनीगंधा की खेती करने के इन दो घटको का अच्छा होना चाहिए।

• **कन्द की रोपाईः** कन्द रोपने का उपयुक्त समय मार्च से अप्रैल होता है। 2 से.मी. व्यास या इससे बड़े आकार वाले कन्द का चुनाव रोपने के लिए करना चाहिए। उचित आकार के कन्दो का रोपाई से पहले अच्छी तरह से साफ करके 30 मिनट तक बावस्टीन नामक फफूँदीनाशी के 0.2 प्रतिशत का घोल (2 ग्राम दवा प्रतिलीटर पानी) में डुबोना चाहिए। यदि कन्द ताजे खोदे गये हो, तो 10^{0} सेन्टीग्रेड तापमान पर 30 दिन रखने के बाद रोपाई के लिए प्रयोग किया जाता है।

कन्दो की रोपाई की दूरी एवं गहराई कन्द के आकार भूमि के प्रकार एवं जलवायु पर निर्भर करती है डबल आकार के किस्मों की रोपाई 30X20 से.मी. तथा सिंगल आकार की किस्मों को 20X20 से.मी. दूरी पर रोपा जाता है। कन्द की रोपाई की गहराई समान्यतः 6 से.मी. दूरी रखी जाती है, परन्तु इसे 3 से 10 से.मी. के मध्य कही भी रखा जा सकता है। सिंगल किस्म यदि एक साल के लिए लगायी जा रही है, तो एक स्थान पर तीन कन्द लगाए। यदि एक से अधिक समय के लिए लगा रहे है तो एक स्थान पर एक या दो कन्द उपयुक्त है।

• **खाद एवं उर्वरकः** रजनीगंधा के पौधों में खाद एवं उर्वरक की उचित मात्रा में प्रयोग प्रभावशाली होता है। नाइट्रोजन की अधिक मात्रा होने पर पुष्प की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

इसलिए एक वर्गमीटर की क्यारी में 3 से 3.50 कि.ग्रा. सडा हुआ कम्पोस्ट, 20 से 30 ग्राम नाइट्रोजन, 15 से 20 ग्राम फॉस्फोरस तथा 10 से 20 ग्राम पोटाश देना लाभदायक होता है। नाइट्रोजन तीन बार में बराबर-बराबर मात्रा में देना चाहिए एक तो रोपने के पहले, दूसरा 60 दिन बाद (3-4 पत्ती होने पर) तथा तीसरी मात्रा फूल निकलने पर देनी चाहिए। कम्पोस्ट, फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा को कन्द को रोपने के पहले ही व्यवहार करना चाहिए।

• **पोषक तत्वों का पर्णीय छिड़कावः** रजनीगंधा में पोषक तत्वों के पर्णीय छिड़काव से पौधों की वृद्धि, पुष्पों की संख्या एवं गुणवत्ता भी अच्छी होती है। अतः पोषक तत्वों के मिश्रण का वानस्पतिक वृद्धि के एक माह बाद से 15 दिन के अन्तराल पर कुल 16 छिड़काव करना चाहिए। पोषक तत्वों के मिश्रण के लिए यूरिया 1.1 कि.ग्रा., डीएपी 1.3 कि.ग्रा., पोटैशियम नाइट्रेट 0.8 कि.ग्रा. और टी पॉल 0.1 प्रतिशत का 400 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ की दर से उपयोग करे।

• **सिंचाईः** कन्दो के अंकुरण एवं वृद्धि के लिए कन्दों की रोपाई से पूर्व खेत में हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। रोपाई के बाद अकुंरण तक खेत में सिंचाई नही करनी चाहिए। अकुंरण के समय खेत में अधिक नमी होने से कन्दों में गलन रोग लगने का भय रहता है। इसी प्रकार जब पुष्प ड़डियाँ विकसित हो रही हो उस समय भी खेत में अधिक नमी नही होना चाहिए। अप्रैल से जून तक प्रति सप्ताह एवं जाड़े में 10 दिनो के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए।

• **खरपतावार नियंत्रणः** अच्छे पुष्प गुच्छे प्राप्त करने के लिए खरपतवार पर नियंत्रण होना आवश्यक है तथा खेत में जब और जैसे भी खरपतवार दिखाई दे तुरन्त निराई करे। तथा अच्छे वायु संचार के लिए प्रत्येक माह खुरपी से निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। ग्रीष्म काल एवं शीतकाल में एक बार तथा वर्षा के माह में दो बार निराई करनी चाहिए। खरपतवार के रासायनिक नियंत्रण के लिए प्रतिहेक्टेयर 1.0 से 1.5 कि.ग्रा. एट्राजीन को 1000 लीटर पानी में घोलकर रोपई के तुरन्त बाद छिड़काव करना चाहिए।

कीट एवं उनकी रोकथाम

• **थ्रिप्सः** यह बहुत ही छोटे कीट होते हैं, जो पत्तियों की निचली सतह पर रहते हैं। यह पत्तियों तथा तनों का रस चूसते हैं, जिससे पूरा पौधा नष्ट हो जाता है। इनके नियन्त्रण के लिए मैलाथियॉन का 0.1 प्रतिशत (1 मिलीलीटर दवा का 1 लीटर पानी में घोल बनाकर) का छिड़काव करना चाहिए।

• **निमेटोड्सः** निमेटोड से प्रभावित पौधे पीले पड़ जाते हैं, पत्तियाँ सूखने लगती है तथा वृद्धि रूक जाती है। इसके नियन्त्रण के लिए रोपाई के पूर्व फ्यूराडान 3 जी प्रति हेक्टेअर 65 किलोग्राम की दर से नालियों में डाल देना चाहिए। यदि खड़ी फसल मे निमेटोड का प्रकोप दिखाई पड़े तो 5 से 10 प्रतिशत नीम की खली का घोल बनाकर जमीन में देने से इनके प्रकोप को रोका जा सकता है।

• **टिड्डाः** टिड्डा रजनीगंधा की नयी पत्तियों और फूल की कलियों को अपने भोजन के रूप में खाता है। टिड्डे बरसात के दिनों में सुबह के समय रजनीगंधा को सबसे ज्यादा हानि पहुँचाते है। अतः इसके नियंत्रण के लिए 15 दिन के अन्तराल में रोगर (1मिली./लीटर) अथवा मैलाथिआन 3 मिली./लीटर प्रति हेक्टेअर छिड़काव करते है।

• **लाल मकड़ीः** सामान्यतः पत्ती की निचली सतह पर पाये जाने वाले, बहुत छोटे कीट होते है। लाल या भूरे रंग के इन कीटों के पत्तियों से रस चूसने से उन पर पीली धारियाँ बन जाती हैं। इनके नियन्त्रण के लिए केलथेन नामक कीटनाशी का 0.2 प्रतिशत (2 मिलीलीटर दवा प्रति लीटर पानी में) घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

बीमारियाँ एवं उनकी रोकथाम

• **पुष्प कलिका सड़न रोगः** इस रोग के प्रकोप से नयी विकसित हो रही पुष्प कलिकाएँ सूख जाती है। इसके नियन्त्रण के लिए रोग ग्रस्त पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।

• **धब्बा एवं झुलसा रोगः** इसका प्रकोप मुख्य रूप से पत्तियों पर होता है। प्रभावित पत्तियों पर पीले से भूरे या काले रंग के धब्बे बन जाते हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए मैंकोजेब का 0.2 प्रतिशत (2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर) की दर से छिड़काव करना चाहिए।

• **चूर्णी फफूँदीः** इस रोग में पत्तियों की सतह पर चूर्ण जैसा जमा हो जाता है और बाद में पत्तियां सूख जाती हैं। इसके बचाव के लिए सल्फेक्स (0.2 प्रतिशत) या 0.06 प्रतिशत केराथेन नामक दवा का छिड़काव करना चाहिए।

• **फूलों की तुड़ाईः** फूलों की कटाई सवेरे सूरज निकलने के पहले या देर शाम को करनी चाहिए। रजनीगंधा के फूलों का प्रयोग दो तरह से किया जाता है। एक तो पुष्प गुच्छ को सुगंध के लिए कमरो में रखने के लिए तथा सुगंध युक्त तेल निकालने के लिए।

• पहले उपयोग के लिए संपूर्ण पुष्प गुच्छे को काटा जाता है। और यह कार्य तब करना चाहिए, जब नीचे के दो फूल खिल गये हो।

ISSN No. 2583-3316

यह कार्य सुबह ही करना चाहिए यदि किसी कारणवश पुष्प गुच्छे सायंकाल को काटे गये है, तो उनको 90 प्रतिशत नमी वाले स्थान पर रखते है, अन्यथा उनके भार में बहुत कमी हो जाती है।

• फूलों को अधिक समय तक ताजा बनाए रखने के लिए शीघ्र से शीघ्र ही पैक किया जाना चाहिए तथा पैकिंग के समय वातावरण नम होना चाहिए।

• फूलों का जीवनकाल बढ़ाने के लिए बेन्जिमिडैजोल, एस.ए.डी. एच., विटामिन सी, चीनी इत्यादि के घोल में रखा जाना चाहिए। सुगंध युक्त तेल निकालने के लिए पूर्ण खिले हुए फूलों को चुनना चाहिए। यह कार्य सुबह 5 से 8 बजे तक सम्पन्न हो जाना चाहिए, 8 बजे के बाद तुड़ाई करने पर तेल की मात्रा में कमी आ जाती है।

• **उपजः** फूलों के उपज पर उसकी किस्म, लगाने के लिए प्रयोग किए गए कन्द के आकार तथा सस्य क्रियाओं का प्रभाव पड़ता है। यदि अच्छा प्रबन्ध किया जाये तो एक हेक्टेयर क्षेत्र से 2 से 4 लाख तक पुष्प ड़डिया (स्पाइक) प्रतिवर्ष प्राप्त कि जा सकती है और 10 से 15 टन प्रति हेक्टेअर प्रतिवर्ष खिले फूल प्राप्त किये जा सकते हैं और साथ ही एक हेक्टेअर से 18 से 30 टन कन्द भी प्राप्त होते है।

• **कन्दों की खुदाई एवं भण्डारणः** जब पुष्पन समाप्त हो जाता है, उस समय पत्तियाँ पीली पड़नी शुरू हो जाती है। और पूरी तरह से सूख जाती है। उस समय ऊपरी भाग को दराती से काट देते है और कन्दों की खुदाई कुदाली या फावड़े से कर लेते है। कन्दों के साथ लगे अन्य छोटे कन्दों को हाथ से अलग कर लिया जाता है। कन्दों को उनके आकार के आधार पर छाँट कर अलग कर लिया जाता है। कन्दों को सड़ने से बचाने के लिए 0.2 प्रतिशत बाविस्टीन या मैंकोजब पाउड़र से उपचारित करके 27^{0} से 35^{0} सेन्टीग्रेड तापमान पर जमीन पर फैलाकर भण्ड़ारण कर दिया जाता है। कभी भी कन्दों को ढ़ेर में नही रखना चाहिए। भण्ड़ारण के समय कन्दों को उलटते पलटते रहते है। रोपाई से पूर्व यदि कन्दों को 10^{0} सेन्टीग्रेड तापमान पर 30 दिन के लिए रखे, तो इससे कन्दों में पुष्प उत्पादन की क्षमता बढ़ जाती है।

• **फूलों से तेल निकालनाः** फूलों से तेल निकालने का कार्य फूल तोड़ने के तुरन्त बाद ही कर देना चाहिए, अन्यथा सत की मात्रा में कमी आ जाती है। इत्र प्राप्त करने के लिये 50 किग्रा. फल तांबे के बड़े बर्तन में, जिसे देग कहते हैं, भर लेते हैं। इसमें फूलों के वजन के बराबर पानी डाल देते हैं और इसको अच्छी तरह डक्कन से बंद कर देते हैं। इसके ढक्कन में एक छेद होता है, जिसमें बाँस के बने चैगा को लगा देते हैं। चैंगा का दूसरा सिरा भबका से जोड़ देते हैं। बाद में देग के नीचे उपलों की आग धीरे-धीरे जलाई जाती है और भाप एव ंतेल भबका में आकर ठंडा हो जाता है। यह प्रक्रिया 4 से 5 घंटे में पूरी होती है। दूसरे दिन भबका में से पानी के ऊपर से इत्र निथार लिया जाता है। फूलो से तेल निकलते हेतु चुनाव करना चाहिए तथा मौसम वराशिभूत गुणों को ध्यान में रखकर फूलों से तेल निकालना चाहिए, जैसे (1) वर्षा से पूर्व (मई-जून) (2) वर्षा (जुलाई-अगस्त). (3) वर्षा के बाद (सितम्बर अक्टूबर)। फूलों को सूर्य निकलने के पहले, सूर्य निकलने के बाद, सूर्य डूबने के पहले और सूर्य डूबने के बाद चार दशाओं में चुना जाता है। इकट्ठे किये गये सभी फूलों का अलग-अलग एन-हेक्सेन से निष्कर्षण किया जाता है। कम दाब पर विलायक तनु किया गया था और प्रत्येक दिशा से राशिभूत की प्राप्त मात्रा की माप की गयी। राशिभूत के नमूनों की पुनः एब्सल्यूट अल्कोहल के साथ क्रिया कराई गई और अल्कोहल में घुलनशील एब्सल्यूट की मात्रा ज्ञात की गई। इससे प्राप्त परिणामों सारणी-1 में दिया गया है।

सारणी-1. ट्यूबरोज में एब्सल्यूट और राशिभूत की मात्रा पर ऋतु और फूलों को चुनने के समय का प्रभावः प्रतिशत फूल चुनने का समय

फूल चुनने का समय	मई-जून		जुलाई-अगस्त		सितम्बर-अक्टूबर	
एब्सल्यूट राशिभूत	एब्सल्यूट		राशिभूत एब्सल्यूट		राशिभूत	
1.सुर्योदय के पूर्व	0.09	20.0	0.08	19.5	013	22.2
2.सुर्योदय के बाद	0.07	18.5	0.08	17.8	0.10	21.6
3.सुर्यास्त के पूर्व	0.08	192	0.09	18.0	0.12	21.2
4.सुर्यास्त के बाद	0.12	21.5	0.11	20.3	0.15	24.5

सारणी-2. फलों के खिलने के पूर्व और खिलने के बाद, फूलों में राशिभूत और एब्सल्यूट की उपस्थित मात्रा को भी आंका गया है

दशा	राशिभूत (प्रतिशत)	एब्सल्यूट (प्रतिशत)
खिलने के पूर्व	0.09	21.0
खिलने के बाद	0.14	23.2

राशिभूत के लक्षणिक गुण

प्रत्येक दशा से प्राप्त राशिभूत एक पीताभ मोम जैसा पदार्थ है, जिसमें ट्यूबरोज फूलों की तीव्र सुगंध भरी होती है। सूर्यास्त के बाद चुने गये फूलों से प्राप्त राशिभूत रासायनिक गुणों को देखा गया। इन्हें सारणी-3 में दिया गया है।

सारणी-3.

गुण	मई-जून (चुनाव)	जुलाई-अगस्त (चुनाव)	सितम्बर-अक्टूबर (चुनाव)
गलनांक	61‘‘- 62‘‘	63‘‘- 64‘‘	56‘‘- 61‘‘
अम्ल मान	17.1	24.0	13.00
साबु मान	17.4	85.5	70.60
एसीटिलिकरण के पश्चात			
साबुनीकरण मान	170.1	160.0	177.1
वाष्प-वाष्पशील पदार्थ	2.4	2.0	3.0

ट्यूबरोज फूलों में उपस्थित सुगंध तेल के विकास पर मौसम का बहुत प्रभाव पड़ता है। फूलों से प्राप्त होने वाली राशिभूत के गुणों पर इसे प्राप्त करने की क्रिया का भी प्रभाव पड़ता है। दिन की अपेक्षा सायंकाल चुने ये फूलों में राशिभूत और एब्सल्यूट की मात्रा अधिक होती है। ये मात्रायें सितम्बर-अक्टूबर में सबसे अधिक होती हैं। मई-जून में अधिक तापक्रम होने के कारण फूलों में उपस्थित सुगंध तेल सांध्र नहीं होता है जबकि जुलाई और अगस्त में आर्द्रता और मेघ होने के कारण फूलों में सुगंध तेल का विकास नहीं हो पाता। जुलाई और अगस्त में चुने गये फूलों के राशिभूत का साबुनीकरण मान सर्वाधिक होता है, जो दर्शाता है कि इस समय इसमें अधिक मात्रा में मोम होता है। साबुनीकरण मान के विपरीत इस समय इसमें वाष्प-वाष्पशील पदार्थों की मात्रा और एसीटीलीकरण के बाद साबुनीकरण मान कम होता है। सितम्बर-अक्टूबर में मौसम साफ रहता है और तापक्रम निम्न रहता है। इस मौसम में फूलों के सुगंध तेल का विकास अधिक होता है, इसलिए इस मौसम में लिये गये फूलों के राशिभूत का साबुनीकरण मान कम. एसीटीलीकरण के बाद साबुनीकरण का मान और वाष्प-वाष्पशील की मात्रा अधिक होती है। इससे सिद्ध होता है कि बंद फूलों की अपेक्षा खिले फूलों में सुगंध तेल अधिक बनता है। इस समस्त प्रयोग से सिद्ध होता है कि खिले फूलों को, सन्ध्याकाल वर्षा समाप्त होने पर सितम्बर-अक्टूबर में चुनने से सर्वाधिक मात्रा में सुगंध तेल प्राप्त होता है। उपरोक्त अवस्थाए प्रौद्योगि ट्यूबरोज फूलों से अधिक मात्रा में सुगंध तेल प्राप्त करने के लिए उत्तम हैं।

निष्कर्ष

रजनीगंधा उत्पादन तकनीक में पारंपरिक प्रथाओं और आधुनिक तकनीकों का संयोजन शामिल है। उचित मिट्टी की तैयारी, सिंचाई समय-निर्धारण और एकीकृत कीट प्रबंधन जैसी सर्वोत्तम प्रथाओं को अपनाकर, रजनीगंधा उत्पादक पैदावार को अनुकूलित कर सकते हैं और फूलों की गुणवत्ता में सुधार कर सकते हैं। रजनीगंधा तेल निष्कर्षण एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें उच्च गुणवत्ता वाले तेल उत्पादन को सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न कारकों पर सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता होती है। चुनौतियों का समाधान करके और टिकाऊ प्रथाओं को अपनाकर, रजनीगंधा तेल निष्कर्षण उद्योग फलता-फूलता रह सकता है और विभिन्न उद्योगों के लिए एक मूल्यवान सुगंध घटक प्रदान कर सकता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

वैज्ञानिक विधि द्वारा चने की खेती

अभिषेक कुमार* एवं कनक लता
आई.सी.ए.आर., कृषि विज्ञान केंद्र, पंचमहल, वेजलपुर, गोधरा, गुजरात
पत्राचारकर्ता: kabhishek15072000@gmail.com

परिचय

चने का वैज्ञानिक नाम *(सिसर एरिटिनम)* है। यह फैबेसी कुल की फसल है, जिसका क्रोमोसोम संख्या 2n = 14 है। हमारे देश में उगायी जाने वाली दलहनी फसलों में चने की फसल सबसे पुरानी और महत्वपूर्ण फसल है। यह शीत ऋतु में उगाई जाने वाली फसल है। मुख्य रूप से चने की खेती करने वाले देशों में रूस, मिस्र, भारत एवं ईरान आदि हैं । भारतवर्ष में चने की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है, जिनमें मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात एवं पं. बंगाल आदि हैं। भारत के कुल प्रदेशों में से सिर्फ मध्य प्रदेश में 40% के करीब चने की खेती की जाती है। कृषि, सहकारिता एवं किसान कल्याण विभाग के अनुसार वर्ष 2022-23 में गुजरात में चने की उपज 1699 कि.ग्रा./है. की दर से प्राप्त हुयी थी ।

महत्त्व एवं उपयोग

चने का उपयोग मुख्य रूप से दाल के लिये किया जाता है परंतु इसको प्रोटीन के लिये पानी में भिगोकर, सब्जी के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। इसको पीसकर बेसन, विभिन्न प्रकार का पकवान और स्वादिष्ट मिठाइयाँ भी तैयार की जाती है। चने का अपशिष्ट पदार्थ (चने का भूसा, छिलका) जो बच जाता है वो जानवरों को खिलाने के उपयोग में लाया जाता है। चने की पत्तियों में मेलिक एसिड (Melic acid), ऑक्सालिक एसिड (Oxalic acid) पाये जाने के कारण भूसा नमकीन होता है, जिसकी वजह से जानवर इसके भूसे को बड़े चाव से खाते हैं। मनुष्य के शारीरिक विकास व उचित पोषण के लिये चने में प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, लोहा, कैल्शियम व अन्य खनिज लवण पर्याप्त मात्रा में उपस्थित रहते हैं। जिसको सारणी

चने में प्रति 100 ग्राम दाने का पोषण मान

अवयव	ग्राम में	अवयव	ग्राम में
पानी	7.68	कैल्शियम	149.00
प्रोटीन	20.5	लोहा	4.31
वसा	6.04	राइवोफ़्लोविन	0.14
कार्बोहाईड्रेट	63	नियासिन	2.30
फाइबर	12.2	सोडियम	24

***Sources include: USDA (United States Department of Agriculture)**

के माध्यम से दर्शाया गया है।

जलवायु: चने की खेती शुष्क फसल के रूप में रबी ऋतु में की जाती है। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की उपलब्धता नहीं होती उन क्षेत्रों में बिना सिंचाई के या सर्दी में होने वाली वर्षा के आधार पर चने की खेती की जाती है। अधिक नमी होने के कारण पौधों में वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है परंतु फूल और फल की मात्रा कम दिखाई देती है। चने की फसल के लिये 60-90सेमी वार्षिक वर्षा उपयुक्त रहती है। फसल की वृद्धि के लिये अधिकतम तापमान 15-25^{o}C होना चाहिए।

भूमि: चने की खेती दोमट मृदा से मटियार मृदा में आसानी से की जाती है। जल धारण की क्षमता रखने वाली मटियार दोमट और काली मिट्टी में भी चने की खेती की जाती है। चने की फसल के लिए मृदा का pH मान 6-8 होना चाहिये।

चने की खेती

खेत की तैयारी: चने की फसल के लिये पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करना चाहिए इसके बाद दूसरी जुताई देशी हल से करना चाहिए, फिर पाटा लगाकर खेत को समतल

कर देना चाहिए।

उन्नत किस्मों का चयनः सर्वप्रथम बात करते हैं बीज की जो कि फसल की अधिक पैदावार करने में अहम भूमिका निभाता है। चने की खेती के लिए कुछ उन्नत बीज के किस्मों का चयन करना चाहिए जैसे मध्य गुजरात में गुजरात चना-1, गुजरात चना-2, जूनागढ चना-3, GG-4, GJG-6, JG-16 आदि प्रकार की प्रजातियाँ बुवाई के लिये प्रयोग में ली जाती हैं। रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का ही चयन करना चाहिए जिससे कि फसल की पैदावार में किसी भी प्रकार की हानि का सामना न करना पड़े।

बुवाई का समय और विधिः मैदानी क्षेत्रों में चने की बुवाई 15 अक्टूबर से 30 अक्टूबर तक की जाती है। लेकिन तराई क्षेत्रों में जहाँ भूमि में अधिक नमीं पाई जाती है, उन स्थानों पर नवम्बर के प्रथम तथा दूसरे सप्ताह तक बुवाई कर देनी चाहिये। अधिक पहल चने की बुवाई करने से उखठा की समस्या फसल में देखने को मिलती है यह अधिकता के कारण फसल में पनपता है बीज की बुवाई करते समय बीज उपचार कर लेना चाहिए। बीज उपचार के लिये थायराम 1-1.5 gm दवा प्रति किग्रा. बीज की दर से प्रयोग करना चाहिए।

बीज दर एवं अंतरणः चने की बुवाई कतारों में करनी चाहिये। असिंचित क्षेत्रों में कतार से कतार की दूरी 30सेमी एवं सिंचित क्षेत्रों में 45सेमी दूरी रखनी चाहिये और पौधों की आपस में दूरी 4-5सेमी रखते हैं।

क्र.स.	बीज का चयन	मात्रा कि.ग्रा./है. में
1	छोटे दाने वाली	65-70 किग्रा
2	मध्यम दाने वाली	75-90 किग्रा
3	बडे दाने वाली	100-125 किग्रा

खाद एवं उर्वरकः चने की फसल की बुवाई से पहले खेत में हरी खाद के रूप में सनई, ढैंचा, इत्यादि का प्रयोग करना चाहिये। साथ ही 5मिटर गोबर की सड़ी खाद खेत में बिखेर कर अच्छी तरह से खेत में मिला देनी चाहिये, जिससे कि मिट्टी की उर्वरा शक्ति बनी रहे। और फसल की पैदावार अधिक से अधिक मिल सके। चने की फसल में 15-20 kg नाइट्रोजन, 40-50 kg फॉस्फोरस एवं 20 kg पोटाश प्रति हैद की दर से उपयोग करना चाहिए।

सिंचाईः खेत में जब नमी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहती है तब शुरुआत में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। चने की फसल में बुवाई के 50 दिन बाद मुख्य रूप से जब फूल निकलना प्रारंभ होता है तो उस समय सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। और यदि शीतकालीन वर्षा हो जाती है, तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

खरपतवार नियंत्रणः बुवाई के 25-30 दिन बाद खुरपी की सहायता से खरपतवारों की निराई-गुडाई कर देनी चाहिए। जिससे कि फसल की वृद्धि में रुकावट न आये।

शाखाएँ तोड़नाः चने की बुवाई करने के 40-45 दिन बाद निपिंग (शीर्ष कर्तन) कर देनी चाहिए। चने की निपिंग (शीर्ष कर्तन) करने से पौधों में शाखाओं की संख्याओं में वृद्धि होती है। जिसके कारण अधिक संख्या में फूल एवं फल बनते हैं और शाखाएँ अधिक निकलती हैं।

फसल चक्रः खरीफ की फसलें मक्का, ज्वार, बाजरा,धान आदि के बाद चने की फसल की जाती है।

रोग नियत्रणः चने में मुख्यतः उखठा, अंगमारी या झुलर्सा

क्र.सं.	रोग	रोगजनक	लक्षण	प्रबंधन
1	उखटा (Wilt)	*Fusarium oxysporum*	पत्तियाँ पीली पड जाती हैं। पौधे की बढ़वार रुक जाती है।	फसल चक्र अपनाना, रोग ग्रसित पौधों को हटाना, अगेती बुवाई नहीं करना, बीज उपचार के लिये थीरम 2 gm/kg. बीज की दर से।
2	झुलसा (Blight)	*Ascochyta rabici*	पौधे के तने, पत्तियों और फलियो पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं।	फसल चक्र अपनाना। रोग प्रतिरोधी किस्मों को बोना।
3	गेरुई (Rust)	*Uromyces sp.*	पत्तियों की निचली सतह पर काले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं।	रोग प्रतिरोधी किस्मों को बोना।
4	तना विगलन (Stem rot) (*Soil borne*)	*Sclerotinia sclerotiorum*	पौधे के तने और जड़ के ऊतक गलने लगते हैं।	रोग दिखाई देने पर Bavistin @ 1 ml/litr दवा का पर्णीय छिडकाव फसल पर कर देना चाहिए।

कीट एवं उनकी रोकथामः चने की फसल में मुख्य रूप से लगने वाले कीटों में चने का फली छेदक, कातरा, सेमीलूपर आदि लगते है, जिसका नियंत्रण किस प्रकार किया जाय इसका विवरण निम्न तालिका में दिया गया है

क्र.सं.	कीट	रोगजनक	लक्षण	प्रबंधन
1	फली छेदक	*Helicoverpa armigera*	यह कीट चने की फसल को 75% नुकसान करता है। यह गिडार चने की फलियों में छेद करके दाने को खा जाती है।	गर्मी के दिनों में गहरी जुताई करनी चाहिए। फली बनने की अवस्था के समय मोनोक्रोटोफोस 40 EC दवा @ 1ml./litr के साथ मिलाकर छिडकाव कर देना चाहिए।
2	कातरा	*Agrotis ipsilon*	यह कीट रबी में उगने वाली सभी दलहनी फसलों को हानि पहुँचाता है। यह पौधे के तने को भूमि के पास से खाता है आवर पत्तियों को भी नुकसान पहुँचाता है।	खेत की तयारी के समय 5% Heptachlor @ 20-25 kg/ha. की दर से खेत में मिलाकर जुताई कर देनी चाहिए।
3	सेमीलूपर	*Autographa nigrisigna*	उत्तर भारत में इसका प्रकोप अधिक है यह पौधों की कलियों, फूलों एवं फलियों को खाकर फसल को क्षति पहुँचाता है।	गर्मी के दिनों में गहरी जुताई करनी चाहिए। फली बनने की अवस्था के समय मोनोक्रोटोफोस 40 EC दवा @ 1ml./litr के साथ मिलाकर छिडकाव कर देना चाहिए।

गेरुई एव तना विगलन आदि प्रकार के रोग लगते हैं, जिसका प्रबंधन निम्नलिखित तालिका से समझा जा सकता है

कटाईः चने की फसल 150-160 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी कटाई हसियें या दांतेडू की सहायता से करते हैं जब दाना सख्त पड जाये समझ लेना चाहिए की फसल कटाई के लिये तैयार है।

उपजः सिंचित क्षेत्रों में 25-30 कु./है. उपज प्राप्त हो जाती है अगर हम मध्य गुजरात की बात करें तो यहाँ GG-5, GJG-3, GG-6 जैसी प्रजातियों से औसतन 15-20 कु./है. की उपज प्राप्त हो जाती है ।

निष्कर्ष

वैज्ञानिक विधि द्वारा चने की खेती करने से किसानों को चने के उत्पादन में वृद्धि होती है। चना एक दलहनी फसल होने के कारण इसकी जड़ों की गाठों में राइजोबियम बैक्टेरिया पाया जाता है जो कि वायुमंडल से नाइट्रोजन का ऑक्सीकरण करके मृदा को पहुँचाता है। किसानों को उर्वरक की लागत में कमी आती है और इसमें से चना निकलने के बाद इसका भूसा पशुओं को खिलाने के लिये उपयोग में कर लिया जाता है जिससे पशुओं की दूध में बढ़ोत्तरी होती है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

करौंदा: शुष्क क्षेत्रों के लिए एक बहुउद्देशीय फल

अजय कुमार[1] , यामिनी यादव[2]*, आदित्य इंगोले[3] एवं अमित कुमार मौर्या[4]

[1]फल एवं बागवानी प्रौद्योगिकी संभाग, [2]सूक्ष्म जैविकी विभाग, [3]फल विज्ञान विभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
[4]उद्यान विज्ञान विभाग, जी. बी. पंत कृषि एंव प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखंड

पत्राचारकर्ता: yaminimicro99@gmail.com

परिचय

करौंदा (*कैरिसा कैरंडस*) एक कठोर और सूखा प्रतिरोधी फल है, जो शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों के लिए एक मूल्यवान फसल के रूप में लोकप्रिय हो रहा है। एपोसाइनेसी परिवार से संबंधित, करौंदा विभिन्न प्रकार की मिट्टी में पनपता है, जिससे यह टिकाऊ कृषि के लिए एक अनुकूलनीय और कम रखरखाव वाला विकल्प बन जाता है। करौंदा, जिसे आम तौर पर भारत का मूल फल माना जाता है, इसके अलावा, यह नेपाल, अफगानिस्तान, दक्षिण अफ्रीका, मलेशिया, इंडोनेशिया, श्रीलंका और ऑस्ट्रेलिया सहित उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से वितरित है। महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, गुजरात और राजस्थान में आदिवासी समुदायों के बीच करौंदा का सामाजिक-आर्थिक महत्व बहुत ज़्यादा है। कठोर परिस्थितियों के प्रति अनुकूलनशीलता इसे शुष्क क्षेत्रों में टिकाऊ कृषि के लिए एक मूल्यवान फल बनाती है।

उपयोग एवं औषधीय महत्व

करौंदा सामान्यतः 3-10 फल के गुच्छों में उगते हैं। ये फल गोलाकार से लेकर अंडाकार आकार तक होते हैं और इनमें 3-5 चपटे तथा अण्डाकार बीज होते हैं। पकने के दौरान फल का रंग बदल जाता है, जो सफेद से लाल और अंत में बैंगनी हो जाता है। करौंदा के फल, पत्ते, छाल और जड़ों का इस्तेमाल पारंपरिक चिकित्सा में लंबे समय से विभिन्न मानवीय बीमारियों के इलाज के लिए किया जाता रहा है। इनमें अत्यधिक प्यास लगना, दस्त, पेट की बीमारियाँ, भूख न लगना, बीच-बीच में बुखार आना, मुँह के छाले, गले में खराश, कान का दर्द, सिफिलिटिक दर्द, जलन, दाद, खाज और खुजली शामिल हैं। करौंदा के विभिन्न भागो में महत्वपूर्ण जैविक गतिविधियाँ (बायोएक्टिविटी) पायी जाती है। इनमें मुख्य रूप से मधुमेह रोधी, रोगाणु रोधी, कोशिका विषीरोधी, दौरा रोधी, यकृत सुरक्षा, हृदय अवसादक, दर्द निवारक, सूजन रोधी, विषाणु रोधी और कोलेस्ट्रॉल कम करने आदि के गुण रखता है। इसकी काँटेदार प्रकृति के कारण, इसे आमतौर पर बगीचों, खेतों और कृषि क्षेत्र में जैव-बाड़ के रूप में उपयोग किया जाता है।

करौंदा के फल का पोषण मूल्य (प्रति 100 ग्राम)

करौंदा आवश्यक पोषक तत्वों से भरपूर होता है, जो इसे आहार में शामिल करने के लिए एक मूल्यवान घटक बनाता है।

पोषक तत्व	ताजा	सूखा
ऊर्जा (किलो कैलोरी)	42	364
प्रोटीन (%)	1.1	2.3
कार्बोहाइड्रेट (%)	2.9	67.1
वसा (%)	2.9	9.6
नमी (%)	91	18.2
कैल्शियम (मिलीग्राम)	2.1	160
फॉस्फोरस (मिलीग्राम)	28	60
लौह (मिलीग्राम)	-	39

मिट्टी की आवश्यकताएँ

करौंदा लगभग सभी प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है, जिसका विभिन्न मिट्टी में अलग-अलग प्रभाव और गुण दिखाता है, जैसा कि नीचे दिया गया है:

- **रेतीली दोमट:** अच्छी जल निकासी और उर्वरता के लिए आदर्श माना जाता है।
- **जलोढ़ मिट्टी:** सबसे अच्छी वृद्धि और उपज प्रदान करती है।
- **खारी और सोडिक मिट्टी:** करौंदा इन स्थितियों को सहन कर सकता है, जिससे यह सीमांत भूमि के लिए उपयुक्त है।
- **चिकनी मिट्टी:** चिकनी मिट्टी में बहुत महीन कण, मुख्य रूप से मिट्टी के खनिज और कम प्रतिशत में कार्बनिक पदार्थ होते हैं, जो अक्सर गीली होने पर चिपचिपी और घनी होती है। अपनी सघन संरचना के कारण चिकनी मिट्टी में जल निकासी की क्षमता धीमी होती है। जब पानी डाला जाता है, तो अतिरिक्त नमी को मिट्टी से रिसने में समय लगता है, जिससे भारी वर्षा के दौरान संतृप्त स्थिति पैदा होती है।
- **पीएच मात्रा:** यह पौधा 5.0 से 8.0 तक के पीएच वाली मिट्टी में उग सकता है, जो पीएच 10 तक की थोड़ी क्षारीय स्थितियों में भी लचीलापन दिखाता है।

जलवायु

करौंदा के लिए उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय जलवायु सबसे उपयुक्त है, जो विशिष्ट तापमान, वर्षा और सूर्य के प्रकाश की आवश्यकताओं वाली स्थितियों में पनपता है। यह पौधा 23 डिग्री सेल्सियस से 30 डिग्री सेल्सियस तक के तापमान में बेहतर तरीके से फलता-फूलता है, और यह पाले के प्रति संवेदनशील होता है। करौंदे की खेती मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रो में अधिक सफलतापूर्वक उगायी की जाती है, हालाँकि यह एक सूखा-सहिष्णु फल है, फिर भी अत्यधिक नमी या जलभराव की स्थिति इसके स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती है। इसके अतिरिक्त, करौंदा को इष्टतम फल प्राप्त करने के लिए पूर्ण सूर्य के प्रकाश (प्रतिदिन 6 घंटे से अधिक) की आवश्यकता होती है, ये जलवायु प्राथमिकताएँ इसको शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में खेती के लिए उपयुक्त बनाती हैं, जहाँ इसकी लचीलापन और अनुकूलनशीलता टिकाऊ कृषि प्रथाओं का समर्थन करती है।

करौंदा की उन्नत किस्में

फलों के रंग के आधार पर करौंदा की किस्मों को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

(i) हरे फल वाले

(ii) गुलाबी फल वाले और

(iii) सफेद फल वाले और अन्य महत्वपूर्ण किस्में नीचे दी गई है:

- **पंत मनोहर क्व्सः** उच्च उपज वाले बड़े आकार के फल होते है।
- **पंत सुदर्शनः** उच्च उत्पादकता वाले बड़े फल।
- **पंत सुवर्णाः** फल के आकार और उपज दोनों में श्रेष्ठ।
- **सी. एच. इ. एस. के.1 :** सी.एच.ई.एस., चेट्टाल्ली, कोडागु, कर्नाटक में पहचाना गया एक आशाजनक जीनोटाइप।
- **सा. एच. ई. एस. के. 2 :** गोधरा में पहचानी गई उच्च उपज क्षमता वाली एक लाल फल वाली किस्म।
- **कोंकण बोल्डः** लगभग 13 ग्राम के फल वजन वाली मीठी फल वाली किस्म, क्षेत्रीय फल अनुसंधान स्टेशन, वेंगुर्ला में विकसित।
- **के-आई. 2 :** उत्कृष्ट उपज।
- **के-एक्स.10 :** 3-9 मीटर पर सबसे लंबा पौधा।
- **के-आई.1 :** 5-25 मीटर पर सबसे चौड़ा पौधा, जिसका फल वजन 15-18 ग्राम होता है।
- **के-वी. 6 :** 20^{0} ब्रिक्स के उच्च कुल घुलनशील ठोस और बड़े फल का आकार (11.9 ग्राम)।

पौधों के प्रसार की विधि

क) अध-र्दृढ़ लकड़ी की विधि

करौंदा पौधों का प्रसार करना आवश्यक होता हैं, क्योंकि वे स्वस्थ पौधों से प्राप्त की जाती हैं और बेहतर विकास सुनिश्चित करती हैं। कटिंग लगभग 15-20 से.मी. लंबी होनी चाहिए, जिसमें प्रकाश संश्लेषण की क्रिया करने के लिए कम से कम दो पत्तियाँ पत्तियों को छोड़ देना चाहिए। पौधे की जड़ को और मजबूत करने के लिए इंडोल ब्यूटिरिक एसिड का उपयोग किया जाना चाहिए। यह ऐसिड जड़ बनाने वाल हार्मोने के रूप में कार्य करता है। अनुकूल नमी और पर्यावरणीय परिस्थितियों के कारण कटिंग लेने और रोपण के लिए मानसून का मौसम सबसे उपयुक्त समय है, जो जीवित रहने और जड़ बनने की दर में सुधार करता है।

ख) एयर लेयरिंग (गूटी विधि)

इस विधि में तने के एक हिस्से को घेरना, उसे जड़ बनाने वाले हार्मोन से उपचारित करना और जड़ के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए उसे नम काई या मिट्टी से लपेटना शामिल है। यह विधि मजबूत जड़ निर्माण सुनिश्चित करती है जबकि तना मातृ पौधे से जुड़ा रहता है। जड़ें बनने में आमतौर

खाद और उर्वरक

करौंदा के पौधों को इष्टतम विकास और फलने के लिए संतुलित खाद और उर्वरक प्रबंधन की आवश्यकता होती है। मिट्टी की उर्वरता को बेहतर बनाने के लिए अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट की जरूरत होती है, जिसमें युवा पौधों को सालाना 5 किलोग्राम और परिपक्व पौधों (3 वर्षों से अधिक) को 15-20 किलोग्राम की आवश्यकता होती है, जिसे फूल आने के मौसम (जून-जुलाई) से पहले डाला जाता है। पोषक तत्वों की आवश्यकताओं में युवा पौधों के लिए 100 ग्राम नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम शामिल है। परिपक्व पौधों के लिए सालाना 200 ग्राम नाइट्रोजन, 75 ग्राम फॉस्फोरस और 125 ग्राम पोटेशियम बढ़ जाता है। जैविक खाद और अकार्बनिक उर्वरकों का एक संयोजन सबसे अच्छा काम करता है, जिसे जड़ अवशोषण को बढ़ाने और सीधे तने के संपर्क से बचने के लिए पौधे के आधार के चारों ओर एक रिंग में लगाया जाता है।

जल प्रबंधन

करौंदा हालाँकि कठोर होता है, लेकिन युवा पौधों के लिए सर्दियों में हर 10-15 दिन और गर्मियों में 6-7 दिन के अंतराल पर सिंचाई की आवश्यकता होती है। ड्रिप सिंचाई पानी के उपयोग के लिए कुशल है, जबकि सूखी पत्तियों के साथ मल्चिंग नमी संरक्षण में सहायता करती है। परिपक्व बागों को आम तौर पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है।

कटाई और उपज

करौंदा के पौधे तीसरे वर्ष से फल देना शुरू कर देते हैं, जिसमें दिसंबर से मार्च के बीच फूल आते हैं और अप्रैल से जून तक फल पकते हैं। फल की परिपक्वता उसके रंग परिवर्तन से निर्धारित होती है और कटाई 3-4 बार में की जाती है। एक परिपक्व पौधा 4-5 किलोग्राम फल देता है, जबकि अच्छी तरह से प्रबंधित बागों में प्रति पेड़ 10-15 किलोग्राम फल मिल सकते हैं। उचित प्रबंधन के साथ उपज क्षमता को और बढ़ाया जा सकता है।

करौंदा के प्रसंस्कृत उत्पाद

• **जैम:** चीनी और पेक्टिन के साथ करौंदा को पकाकर बनाया जाता है, जिससे एक मीठा और स्वादिष्ट जैम बनता है।

• **जेली:** फलों के रस, चीनी और पेक्टिन से तैयार की जाती है, जिससे एक चिकना और जेली योग्य पदार्थ बनता है।

• **अचार:** कच्चे करौंदे को मसालों और सिरके के साथ मिलाकर तीखा और स्वादिष्ट अचार बनाया जाता है।

• **स्क्वैश:** फलों के गूदे को चीनी और पानी से एक मीठा पेय प्रदार्थ बनाया जा सकता है।

• **सिरप:** चीनी और पानी के साथ उबाला गया करौंदा एक मीठा तरल पदार्थ बनाता है, जिसका उपयोग पेय पदार्थों या मिठाइयों में किया जाता है।

• **चटनी:** करौंदे को मसालों और सिरके के साथ मिश्रित, किया जाता है, जिससे के साथ एक स्वादिष्ट चटनी बनाई जाती है।

• **कैंडी:** चीनी की चाशनी में पका हुआ करौंदा मीठा और चबाने लायक हो जाता है, जो नाश्ते या मिठाई के रूप में परोसा जा सकता है।

• **मिष्ठान्न:** सूखे या कैंडिड करौंदा का उपयोग केक और कुकीज़ उत्पादो में किया जाता है, जिससे ये ज्यादा स्वादिष्ट हो जाते है।

निष्कर्ष

करौंदा अपनी सूखा सहनशीलता, खराब मिट्टी के अनुकूल होने और फल उत्पादन के माध्यम से आर्थिक क्षमता के कारण शुष्क क्षेत्रों में टिकाऊ कृषि के लिए एक व्यवहारिक विकल्प का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी खेती न केवल खाद्य सुरक्षा में योगदान देती है बल्कि चुनौतीपूर्ण वातावरण में जैव विविधता और मिट्टी के स्वास्थ्य को भी बढ़ाती है। करौंदा फल प्रकृति का एक उल्लेखनीय उपहार है, जो स्वाद, पोषण और व्यावहारिकता का एक रमणीय संयोजन प्रदान करता है। चाहे इसे तीखे व्यंजन के रूप में खाया जाए या इसके स्वास्थ्य लाभों के लिए उपयोग किया जाए। करौंदा कई संस्कृतियों की पाक और औषधीय परंपराओं में एक विशेष स्थान रखता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

बीज प्राइमिंग के विभिन्न तकनीक

प्रमिला*, श्याली कुमारी, अविनाश कुमार पटेल, संजय कुमार एवं पंकज सिंह
पंडित दीनदयाल उपाध्याय उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, पिपराकोठी
डॉ0 रोजेन्द्र प्रसाद केन्द्रिय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार
पत्राचारकर्ताः prmtca@gmail.com

परिचय

कुशल फसल उत्पादन सफल रोपण एवं उच्च अंकुर शक्ति पर निर्भर करता है। ये कारक एकरूप वृद्धि, परिपक्वता और उच्च उत्पादकता निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। हालाँकि, प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियाँ और कमजोर बीज, धीमी तथा असमान बीज अंकुरण का कारण बन सकते है। बीज प्राइमिंग एक कार्यिक तकनीक है, जिसमें तीव्र अंकुरण हेतु पूर्व-अंकुरण चयापचय को बढ़ाने के लिए बीजों का नियंत्रित जलयोजन और निर्जलीकरण शामिल किया जाता है। प्राइम बीजों को तेजी से उगने, स्फूर्त रूप से बढ़ने और अधिक उपज देने के लिए जाना जाता है, जो विशेष रूप से सूखे जैसी प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बीज के प्रदर्शन को बढ़ाने और पर्यावरणीय तनाव का सामना करने के लिए विभिन्न कार्यिक तथा अकार्यिक पद्धतियों का विकास किया गया है। प्राइमिंग का मुख्य लाभ किसी भी तापमान पर अंकुरण की दर में वृद्धि करना है। व्यवसायिक रूप से बीज प्राइमिंग का उपयोग जैविक तथा अजैविक तनावों के प्रभाव को खत्म करने अथवा बहुत कम करने हेतु किया जाता है।

बीज प्राइमिंग

बीज प्राइमिंग एक ऐसी तकनीक है, जिसमें अंकुरण से पहले चयापचय प्रक्रियाओं को आरंभ करने के लिए बीजों को हाइड्रेट किया जाता है और पुनः उन्हें मूल नमी की मात्रा में वापस सुखाया जाता है ताकि मूलांकुर उद्धव को रोका जा सके। इस विधि का उपयोग बुवाई से पहले बीज को सक्रिय करने के लिए किया जाता है। बीज प्राइमिंग विभिन्न चयापचय प्रक्रियाओं को उत्तेजित करता है, जो बीजों के अंकुरण और उद्धव को बेहतर बनाता है। यह तकनीक प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों जैसे सूखा, गर्मी से तनाव, लवणता, पोषक तत्व तनाव और कई अन्य पर्यावरणीय तनावों के बावजूद भी अंकुर उत्पादन को बढ़ाती है, जिसके परिणामस्वरूप फसल बेहतर एवं अधिक उपजाऊ होती है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि बीज प्राइमिंग नाजुक भूमि में प्रतिकूल परिस्थितियों से निपटने के लिए एक आशाजनक तकनीक है।

बीज प्राइमिंग के विभिन्न तकनीकें

बीज प्राइमिंग की विधियों को फसल की जरूरतों और पर्यावरणीय परिस्थितियों के आधार पर चुना जाता है, जिसके परिणामस्वरूप चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में भी बेहतर अंकुरण और समग्र उपज देखी जाती है।

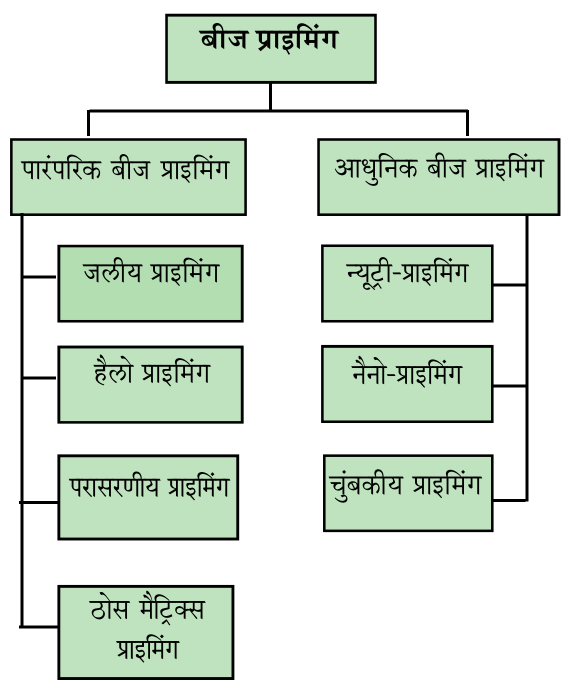

बीज प्राइमिंग की पारंपरिक तकनीकें

क) जलीय प्राइमिंगः यह एक सस्ती एवं कम खतरे वाली विधि है, जिसमें बीजों को एक निश्चित अवधि के लिए उचित तापमान पर आसुत जल में भिगाया जाता है तदोपरांत बुवाई से पहले उनकी मूल नमी की मात्रा को अनुमानित करने के लिए पुनः सुखाया जाता है। यह प्राइमिंग विधि विशेष रूप से प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों जैसे उच्च तापमान और पानी की कमी वाले क्षेत्रों में उपयोगी होते है, क्योंकि यह पानी के अवशोषण और बीज जलयोजन की दक्षता को बढ़ाती है।

ख) हैलो-प्राइमिंगः यह बुवाई से पहले बीज को प्राइम करने की एक ऐसी पद्धति है, जिसमें बीजों को KNO_3 $CaCl_2$ और $CaSO_4$ जैसे अकार्बनिक लवणों के जलीय घोल में डुबाया जाता है। अकार्बनिक पदार्थो के साथ बीजों का यह पूर्व-उपचार फसल की वृद्धि एवं विभिन्न अजैविक तनावों के प्रति प्रतिरोध को बढ़ाने में सहायक होते है। जिससे अंतः लवणीय मिट्टी में उगाई जाने वाली फसलों के अंकुरण, स्थापना और उपज में सुधार होता है।

ग) परासरणीय प्राइमिंगः परासरणीय घोल के साथ प्राइमिंग में बीजों को एक निश्चित अवधि के लिए PEG, ग्लिसरॉल, मैनिटोल या सोर्बिटोल जैसे परासरणीय तत्वों के घोल में डुबाने के बाद हवा में सुखाया जाता है। यह विधि बीज में अतिरिक्त जल के प्रवेश को रोकती है, जिससे ROS का संचय कम होता है और कोशिकाओं को ऑक्सीकारक क्षति से बचाया जाता है।

घ) ठोस मैट्रिक्स प्राइमिंगः इस विधि में सामान्य ठोस वाहकों में वर्मीक्यूलाइट, चारकोल, मिट्टी और रेत प्रयोग किये जाते हैं। ठोस मैट्रिक्स प्राइमिंग में बीजों को जल एवं ठोस पदार्थों के साथ विशिष्ट अनुपात में मिलाया जाता है। जो बीजों को धीरे-धीरे गीला करता है, जिससे वे अंकुरण के लिए तैयार हो जाते हैं।

ङ) हॉर्मोनल बीज प्राइमिंगः हॉर्मोनल बीज प्राइमिंग एक ऐसी तकनीक है, जिसमें बीजों को पादपहॉर्मोन की इष्टतम सांद्रता वाले घोल में डुबाया जाता है, जो उनके चयापचय को बढ़ाता है। यह प्रक्रिया बढ़ी हुई कार्यिक गतिविधियों और जड़ उत्पादन के माध्यम से पोषक तत्वों के अवशोषण को बढ़ावा देकर अंकुरण, अंकुर वृद्धि और उपज में सुधार करने के लिए जानी जाती है। यह विधि विशेष रूप से गर्मी और सूखे की स्थिति में फसलों को स्थापित करने में उपयोगी है। आमतौर पर बीज प्राइमिंग के लिए उपयोग किए जाने वाले पादपहॉर्मोन IAA, साइटोकाइनिन, जिबरेलिक अम्ल, ABA, सैलिसिलिक अम्ल और एथिलीन है।

च) जैविक प्राइमिंगः फसल की वृद्धि एवं उपज में अतिरिक्त लाभ के लिए बीज प्राइमिंग विभिन्न जैविक माध्यमों से भी की जा सकती है। ट्राइकोडर्मा हरजियानम, स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस, बैसिलस एमाइलोलिकेफेसिएन्स, सेराटिया मार्सेसेंस, एजोस्पिरिलम ब्रासिलेंस, ट्राइकोडर्मा लिक्सी, राइजोफेगस इरेगुलेरिस, ट्राइकोडर्मा स्पेरेलम आदि जैविक उपकरण जैविक प्राइमिंग में सहायक है।

बीज प्राइमिंग में आधुनिक तकनीकें

क) न्यूट्री प्राइमिंगः न्यूट्री प्राइमिंग एक पूर्व-बुवाई बीज उपचार तकनीक है जिसमें बीजों को पोषक तत्वों के घोल में भिगाया जाता है। ताकि उनकी गुणवत्ता तथा पोषक तत्वों में वृद्धि हो सके। सूक्ष्म पोषक तत्व श्वसन और प्रकाश संश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो पौधे की वृद्धि और विकास के लिए आवश्यक है। इन प्रक्रियाओं में रूकावट अथवा छेड़छाड़ विकास और उपज में कमी का कारण बन सकती है। इस चुनौती को दूर करने के लिए, सूक्ष्म पोषक तत्वों को सीधे न्यूट्री प्राइमिंग के माध्यम से बीजों पर अवलेपित किया जाता है। हालाँकि, पोषक तत्वों के घोल की इष्टतम अवधि और सांद्रता फसल और बढ़ती परिस्थितियों के आधार पर भिन्न हो सकती है और अधिक भिगाने व पोषक तत्वों की विषाक्तता से बचने के लिए सावधानीपूर्वक ध्यान दिया जाना चाहिए।

ख) नैनो-प्राइमिंगः नैनो-प्राइमिंग तकनीक में बीजों की गुणवत्ता और प्रदर्शन को बेहतर बनाने के लिए नैनो-सामग्री का उपयोग किया जाता है। इस विधि में बीजों को नैनोकणों वाले घोल से उपचारित किया जाता है ये नैनोकणों, जो सामान्यतः 1 से 100 नैनोमीटर के होते है। नैनो-प्राइमिंग तकनीक बीज प्राइमिंग के अत्याधुनिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है, जो बीजों के अंकुरण, अंकुर शक्ति और विकास को बढ़ाने के लिए नैनोकणों की क्षमता का उपयोग करती है। नैनो-फॉर्मूलेशन को मीडिया के रूप में उपयोग करके, सिल्वर नैनोकणों (AgNPs), गोल्ड नैनोकणों (AuNPs) और मल्टी-वॉल कार्बन नैनोटयूब (MWCNTs) जैसे नैनोकणों को बीज प्राइमिंग के लिए नियोजित किया जाता है। नैनो-प्राइमिंग प्रक्रिया के दौरान बीजों द्वारा नैनोकणों का अवशोषण परिवर्तनशील हो सकता है साथ ही साथ यह देखा गया है कि नैनोकणों की एक बड़ी मात्रा बीज की सतह पर एक परत के रूप बनी रहती है। यह परत बीज के प्रदर्शन को बढ़ाने वाले असंख्य लाभों जैसे, α – एमाइलेज एंजाइम की गतिविधि में वृद्धि, अंकुर विकास को बढ़ावा देने के लिए घुलनशील शर्करा में वृद्धि एवं

अंकुरित बीजों में एक्वापोरिन जीन की उत्तेजना आदि को सुगम बनाती है। हालॉकि, कृषि में नैनोकणों के उपयोग से जुड़े अंतर्निहित तंत्र और संभावित जोखिमों को स्पष्ट करने के लिए अध्ययन की आवश्यकता है।

ग) चुंबकीय प्राइमिंगः इस विधि में सूखे बीजों को एक विशेष चुंबकीय क्षेत्र में रखा जाता है, जिसके फलस्वरूप बीज के अंदर कार्यिक परिवर्तन प्रारंभ हो जाते है। चुंबकीय रूप से प्राइम किए गए बीजों में उच्च अंकुरण गतिकी, संवर्धित जड़ तथा अंकुर विकास, प्रवर्धित जैव-द्रव्यमान उपज, साथ ही बेहतर जल अवशोषण जैसी कई विशेषताएँ पायी जाती है, जो विभिन्न एंजाइमों जैसे एमाइलेज, प्रोटिएज और डिहाइड्राजनेज के जलयोजन को गति प्रदान करती है। इससे पानी की कमी और लवणता तनाव की परिस्थितियों में भी अंकुरण में तेजी आती है एवं अंकुर शक्ति को बढ़ावा मिलता है।

बीज प्राइमिंग की क्रियाविधि

बीज प्राइमिंग प्रक्रिया में तीन चरण होते है

- **प्रथमः** शोषण चरण में बीज अपनी कम जल क्षमता के कारण तेजी से पानी को अवशोषित करता है।
- **द्वितीयः** द्वितीय चरण में कोशिकीय स्तर पर चयापयच होता है। इस विशेष चरण के दौरान, नमी के स्तर और प्रोटीन संश्लेषण में एक उल्लेखनीय कमी होती है। सक्रियण चरण के दौरान, पुनर्जलीकरण के कारण बीज की कोशिकीय संरचना में कई तरह के परिवर्तन होते हैं जैसे कोशिकीय विभाजन, न्यूक्लिक अम्ल संश्लेषण, प्रोटीन संश्लेषण तथा एटीपी उत्पादन आदि।
- **तृतीयः** तृतीय चरण में बीज द्वारा जल अवशोषण में पुनः स्थान होता है और मूलांकुर का उभरना कोशिकीय विस्तार एवं वृद्धि के चरण में अंकुरण प्रक्रिया के प्रवेश को दर्शाता है।

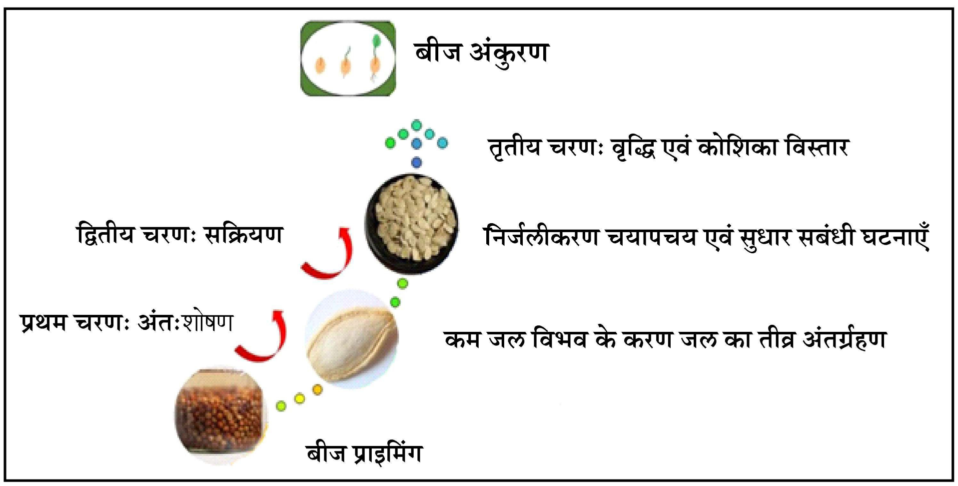

निष्कर्ष

वर्तमान समय में, खाद्य सुरक्षा और पर्यावरणीय स्थिरता की चुनौतियों का सामना करना ही मुख्य उद्देश्य है। इस उद्देश्य के लिए, जलीय प्राइमिंग, हैलो प्राइमिंग, परासरणीय प्राइमिंग, जैविक प्राइमिंग, न्यूट्री प्राइमिंग, नैनो प्राइमिंग तथा चुंबकीय प्राइमिंग आदि विभिन्न बीज प्राइमिंग तकनीकें आधुनिक कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। बीज प्राइमिंग न सिर्फ बेहतर व समान अंकुरण एवं अंकुर शक्ति के माध्यम से उच्च गुणवत्ता को बढ़ाने में सहायक है बल्कि सुदृढ़ चयापचय के माध्यम से वृद्धि तथा विकास को भी बढ़ता है, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न तनाव की स्थितियों में भी बेहतर उपज होती है। तनाव के अवांछनीय प्रभावों को कम करने के लिए फसलों में बीज प्राइमिंग एक आशाजनक तकनीक के रूप में उभरी है। बीज प्राइमिंग बीज में होने वाली क्षतियों में भी सुधार करती है। इसलिए बीज प्राइमिंग तकनीकों को एक बेहतर समाधान के रूप में देखा जा सकता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

शीतकालीन सब्जियाँः उत्तम स्वास्थ्य के लिए वरदान

प्रहलाद सहाय शर्मा[1]*, रोनक कूड़ी[2], नरेश कुमार[3], कुलदीप सिंह राजावत[4] एवं मनोहर लाल मीणा[5]

[1,2,4एवं 5] उद्यान विज्ञान विभाग, [3]सस्य विज्ञान विभाग

कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान

पत्राचारकर्ताः pcsorthiya@gmail.com

परिचय

सर्दियों का मौसम वह समय है, जब हमारा शरीर ठंड से बचने के लिए ज्यादा ऊर्जा की आवश्यकता को महसूस करता है और हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली को भी मजबूत बनाए रखने की जरूरत होती है। इस समय हमें ऐसे खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होती है, जो न सिर्फ शरीर को गर्म रखें बल्कि स्वास्थ्य और पोषण बनाये रखने में भी मददगार साबित हों। सर्दियों के सुपरफूड्स इन सभी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। सर्दियों में ठंड के असर से बचने के लिए हमें अपने आहार में कुछ खास बदलाव करने की आवश्यकता होती है। जिससे हमे, इस मौसम में ऐसे खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए, जो न केवल शरीर को गर्म रखें बल्कि हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली को भी मजबूत कर सके। इस संदर्भ में फूलगोभी और ब्रोकली जैसे सुपरफूड्स हमारे स्वास्थ्य लिए लाभदायक साबित होते हैं।

क्रूसीफेरस सब्जियों की विशेषताएँ

फूलगोभी, पत्तागोभी, ब्रोकली और शलजम सभी क्रूसीफेरस सब्जियाँ के अंतर्गत आती हैं। इनका सेवन कच्चा भी किया जा सकता है, जो इन्हें और भी ज्यादा फायदेमंद बनाता है। इन सब्जियों में विटामिन C की भरपूर मात्रा पाई जाती है, जो सर्दियों में शरीर को संक्रमण से लड़ने में मदद करती है। इसके अलावा, इसमें कैलोरी की मांत्रा बहुत कम होती है, जो वजन को नियंत्रण करने में मदद करता है।

क्रूसीफेरस सब्जियों की न्यूट्रिशनल वैल्यू

क्रूसीफेरस सब्जियाँ कैलोरी में कम और पोषण में उच्च होती हैं। इनमें फाइबर, विटामिन C विटामिन K और फोलेट की भरपूर मात्रा पायी जाती है। साथ ही, इसमें मिनरल्स जैसे पोटेशियम, मैग्नीशियम और आयरन का भी अच्छा स्रोत होता हैं।

- **विटामिन C का खजाना**

विटामिन C एक शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट है, जो कोशिकाओं को फ्री रेडिकल्स से होने वाले नुकसान से बचाता है। यह कोलेजन उत्पादन में मदद करता है, जो त्वचा, हड्डियों और रक्त वाहिकाओं के लिए आवश्यक होता है। 100 ग्राम ब्रोकली में रोजाना की आवश्यकता का लगभग 148% विटामिन C होता है। फूलगोभी में विटामिन C की मात्रा 80% के करीब होती है।

• फाइबर की प्रचुरता

फाइबर पाचन स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है। यह ब्लड शुगर को नियंत्रित करता है और कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में मदद करता है। इसके अलावा, यह वजन प्रबंधन में भी सहायक होती है, क्योंकि यह पेट भरे होने का अहसास कराता है। 100 ग्राम पत्तागोभी में लगभग 2 ग्राम फाइबर होता है। ब्रोकली और शलजम में भी फाइबर की उच्च मात्रा पाई जाती है।

• एंटीऑक्सीडेंट्स और फाइटोकेमिकल्स

क्रूसीफेरस सब्जियाँ एंटीऑक्सीडेंट्स जैसे ग्लूकोसिनोलेट्स से भरपूर होती हैं। ये यौगिक कैंसर से बचाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनमें पाया जाने वाला सल्फोराफेन यकृत को स्वस्थ करने में मदद करता है और शरीर को कैंसरजनक तत्वों से बचाता है।

क्रूसीफेरसी सब्जियों के स्वास्थ्य लाभ

गोभी, फूलगोभी, पत्तागोभी, ब्रोकली और शलजम जैसी क्रूसीफेरस सब्जियाँ न केवल स्वादिष्ट होती हैं बल्कि सेहत के लिए भी बेहद लाभकारी होता हैं। इन सब्जियों के पौष्टिक गुण इन्हें सर्दियों का आदर्श आहार बनाते हैं, जिनका विवरण निम्नवत हैः

क) हृदय स्वास्थ्य में सुधारः सर्दियों के दौरान हृदय रोग, विशेष रूप से कोरोनरी हार्ट डिजीज के मामलों में वृद्धि होती है। ऐसे में क्रूसीफेरस सब्जियों का सेवन हृदय को स्वस्थ रखने में मदद करता है। ये सब्जियाँ कोलेस्ट्रॉल के स्तर को नियंत्रित करती हैं और ब्लड प्रेशर को स्थिर बनाए रखती हैं, जिससे हृदय रोग का खतरा कम होता है।

ख) मस्तिष्क की कार्यक्षमता में सुधारः इन सब्जियों में पाए जाने वाले विटामिन K और एंटीऑक्सीडेंट मस्तिष्क की कार्यक्षमता को बेहतर बनाने में मदद करता है तथा इनका नियमित सेवन करते रहने से स्मृति को बढ़ावा मिलता है और न्यूरोलॉजिकल समस्याओं के जोखिम को कम करता है।

ग) रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ानाः गोभी और उसके परिवार की अन्य सब्जियाँ विटामिन C का उत्कृष्ट स्रोत होता हैं। यह पोषक तत्व प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाता है, जिससे शरीर सर्दी, फ्लू और अन्य संक्रमणों से बचा रहता है।

घ) एनीमिया का खतरा कम करनाः फूलगोभी और ब्रोकली में मौजूद आयरन और विटामिन C का संयोजन शरीर में आयरन के अवशोषण को बढ़ाता है, जिससे एनीमिया के जोखिम को कम किया जा सकता है।

ङ) कैंसर से सुरक्षाः क्रूसीफेरस सब्जियों में सल्फोराफेन और ग्लूकोसिनोलेट्स जैसे यौगिक प्रदार्थ होते हैं, जो कैंसरजनक तत्वों से बचाने में सहायक हैं। ये यौगिक प्रदार्थ कैंसर कोशिकाओं के विकास को रोकने में मदद करते हैं।

च) त्वचा और बालों का स्वास्थ्यः विटामिन C और अन्य पोषक तत्व त्वचा को स्वस्थ और बालों को मजबूत बनाते हैं।

शीतकालीन सब्जियों के उपयोग करने की विधियाँ

क्रूसीफेरस सब्जियों को अपनी डाइट में शामिल करना आसान है। इन्हें कई तरह से पकाया और खाया जा सकता हैः

क) स्टर-फ्राईः ब्रोकली और फूलगोभी को हल्का भूनकर स्वादिष्ट और पौष्टिक स्टर-फ्राई बनाया जा सकता है।

ख) सलादः पत्तागोभी और शलजम का उपयोग सलाद में किया जा सकता है।

ग) सूपः सर्दियों में इन सब्जियों का गरमा गरम सूप बनाकर आनंद लिया जा सकता है।

घ) भरवा परांठाः क्रूसीफेरस सब्जियों को भरवा पराठा बनाकर परोसा जाता है।

सावधानियाँ और संभावित जोखिम

हालाँकि क्रूसीफेरस वेजिटेबल्स स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद हैं, लेकिन कुछ स्थितियों में इनके सेवन को लेकर सतर्कता बरतनी चाहिए।

• **थायरॉइड समस्याएँः** इन सब्जियों में गोइट्रोजेन्स होते हैं, जो थायरॉइड हार्मोन के उत्पादन को बाधित कर सकते हैं। थायरॉइड के मरीजों को इनका सेवन सीमित मात्रा में करना चाहिए।

• **पाचन समस्याएँः** अधिक मात्रा में सेवन करने से कुछ लोगों को पेट फूलने या गैस की समस्या हो सकती है।

• **एलर्जीः** कुछ लोगों को इन सब्जियों से एलर्जी हो सकती है। ऐसे में इन्हें खाने से पहले डॉक्टर की सलाह लेना आवश्यक है।

निष्कर्ष

सर्दियों में फूलगोभी, पत्तागोभी, ब्रोकली और शलजम जैसे क्रूसीफेरस सब्जियों का सेवन सेहत के लिए बेहद लाभकारी हो सकता है। इनका नियमित सेवन न केवल इम्यूनिटी को मजबूत करता है बल्कि हृदय स्वास्थ्य, मष्तिस्क प्रणाली और वजन नियंत्रण में भी मदद करता है। इन सब्जियों को अपनी डाइट में शामिल करना न केवल स्वादिष्ट होता है बल्कि यह आपको सर्दियों में सेहतमंद बनाए रखने में भी मदद करता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

आयुर्वेद का वरदानः गिलोय

रोनक कूड़ी*, प्रहलाद सहाय शर्मा, कल्पना एवं अनिता चौधरी

उद्यान विज्ञान विभाग, कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान

पत्राचारकर्ताः ronakkuri9782@gmail.com

परिचय

गिलोय, जिसे आयुर्वेद में 'अमृत' या 'अमृता' के नाम से जाना जाता है, भारतीय पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली का एक अनमोल हिस्सा है। इसका वैज्ञानिक नाम *Tinospora cordifolia* है। गिलोय को 'सौ बीमारियों की एक दवा'' कहा जाता है, क्योंकि यह शरीर के समग्र स्वास्थ्य को सुधारने और कई रोगों को दूर करने में अद्वितीय कार्य करता है। इसे आयुर्वेद का वरदान मानना इसलिए उचित है, क्योंकि यह रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, संक्रमणों से बचाव और शरीर के संतुलन को बनाए रखने में बेहद प्रभावी है। गिलोय एक बेलनुमा पौधा है जो सामान्यतः बड़े पेड़ों जैसे नीम, आम और इमली किसी रस्सी अथवा बास के सहारे चढ़ता है। आयुर्वेद में इसका उल्लेख कई ग्रंथों जैसे चरक संहिता और सुश्रुत संहिता में मिलता है। गिलोय को विशेष रूप से 'त्रिदोष नाशक' माना गया है, क्योंकि यह वात, पित्त और कफ को संतुलित करता है।

गिलोय के औषधीय गुण

गिलोय में कई महत्वपूर्ण औषधीय गुण होते हैं, जो इसे स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी बनाते हैः

क) एंटीऑक्सीडेंट्सः गिलोय में उच्च मांत्रा में एंटीऑक्सीडेंट्स होते है, जो शरीर को विषाक्त पदार्थों से मुक्त करता है।

ख) एंटीइंफ्लेमेटरीः इसमें पाये जाने वाला एंटीइंफ्लेमेटरा गुण सूजन और दर्द को कम करने में मदद करता है।

ग) इम्यूनोमॉड्युलेटरीः गिलोय में मौजूद प्रतिरक्षा प्रणाली के गुण शरीर को प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत करता है।

घ) एंटीबैक्टीरियल और एंटीवायरलः यह अनेक संक्रमणो से बचाव करने में सहायक होता है।

ङ) हिपैटोप्रोटेक्टिवः गिलोय में पाये जाने वाला यकृत (लिवर) को स्वस्थ रखता है।

गिलोय के स्वास्थ्य लाभ

क) प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायकः गिलोय शरीर की इम्यूनिटी को बढ़ाने के लिए अत्यंत प्रभावी है। यह सफेद रक्त कोशिकाआ (WBCs) को सक्रिय करता है, जिससे शरीर वायरस और बैक्टीरिया से लड़ने में सक्षम होता है। कोविड-19 महामारी के दौरान गिलोय को इम्यूनिटी बूस्टर के रूप में व्यापक रूप से अपनाया गया।

ख) ज्वरनाशक (बुखार के लिए प्रभावी): गिलोय विशेष रूप से डेंगू, मलेरिया और अन्य बुखारों में लाभकारी है। यह

शरीर के तापमान को नियंत्रित करने और प्लेटलेट काउंट को बढ़ाने में सहायक है।

ग) मधुमेह नियंत्रणः गिलोय को 'मधुनाशिनी' कहा गया है। यह रक्त में शर्करा के स्तर को नियंत्रित करता है और मधुमेह रोगियों में इंसुलिन संवेदनशीलता को बढ़ाता है।

घ) पाचन तंत्र को सुधारता है: गिलोय अपच, एसिडिटी और कब्ज जैसी पाचन संबंधी समस्याओं को दूर करता है। यह भूख को बढ़ाता है और पाचन को सही करता है।

ङ) यकृत को स्वस्थ रखता है: गिलोय लिवर को डिटॉक्स करने में मदद करता है और हेपेटाइटिस जैसी बीमारियों को दूर करने में सहायक होता है। यह शरीर में एंजाइमों के संतुलन को बनाए रखता है।

च) साँस संबंधी रोगों में लाभकारीः अस्थमा, खांसी और सर्दी जैसी साँस संबंधी समस्याओं में गिलोय उपयोगी है। यह श्वसन तंत्र को स्वास्थ्य रखने में सहायक होता करता है और बलगम को कम करता है।

छ) मानसिक तनाव और चिंता को कम करता है: गिलोय मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने में सहायक है। यह तनाव और चिंता को कम करता है और मस्तिष्क की कार्यक्षमता को बढ़ाता है।

ज) त्वचा और बालों के लिए फायदेमंदः गिलोय त्वचा साफ और चमकदार बनाता है। यह बालों को झड़ने से रोकता है और उनकी मजबूती को बढ़ाता है।

गिलोय को उपयोग करने की विधि

- **गिलोय का रसः** ताजे गिलोय की पत्तियों या तनों को पीसकर उसका रस सुबह खाली पेट पिया जा सकता है।
- **गिलोय काढ़ाः** गिलोय की डंडियों को उबालकर उसका काढ़ा बनाएं और इसे दिन में एक बार पिएं।
- **गिलोय चूर्णः** गिलोय का सूखा पाउडर शहद या पानी के साथ लिया जा सकता है।
- **गिलोय टैबलेट और कैप्सूलः** बाजार में गिलोय के टैबलेट और कैप्सूल उपलब्ध हैं, जो रोजाना उपयोग किए जा सकते हैं।

निष्कर्ष

गिलोय भारतीय आयुर्वेद का अमूल्य उपहार है। यह न केवल बीमारियों को दूर करने में सहायक है, बल्कि संपूर्ण स्वास्थ्य को बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आज की भागदौड़ भरी जिंदगी में गिलोय जैसी प्राकृतिक औषधियों का उपयोग हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए वरदान साबित हो सकता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

मेथी की वैज्ञानिक खेती

ऋतु सदरे, श्रुति बी. जनकात एवं एच. वी. वसावा*
शाकभाजी विभाग, जूनागढ़ कृषि विश्वविधालय, जूनागढ़
पत्राचारकर्ता: hvvasava@jau.in

परिचय

फेनुग्रीक, जिसे हिंदी में "मेथी" कहा जाता है, मेथी का वानस्पतिक नाम *ट्राइगोनेला फेनम* मेथी हैं, जो फैबेसी परिवार से संबंधित है। यह एक बहुमुखी जड़ी-बूटी है, जो स्वास्थ्य लाभ के लिए व्यापक रूप से उपयोग की जाती है। मेथी के पत्ते और बीज दोनों ही भोजन और औषधीय गुणों के लिए उपयोगी होते हैं, इसकी हरी पत्तियों में प्रोटीन विटामिन सी तथा खनिज तत्व पाये जाते है, जो बीज तथा दवाई के रूप में उपयोगी किये जाते है यह भूमध्य सागर के पूर्वी तट पर स्थित देशों जैसे भारत, अफ्रीका, मिस्त्र, मोरक्को और कभी-कभी इंग्लैंड के किन्ही किन्ही स्वदेशी स्थानों में भी मेथी कि खेती की जाती है।

मेथी के उपयोग

मेथी के पत्तों का उपयोग सब्जी बनाने में किया जाता है, जैसे आलू मेथी, मेथी मटर मलाई। मेथी के पत्तों से मेथी पराठा एवं सलाद बनाया जाता है और मेथी के बीजों का उपयोग विभिन्न मसाले मिश्रणों में किया जाता है, जैसे पंचफोरन। मेथी के बीज को अचार में डाले जाते हैं। दाल और करी में मेथी के बीज स्वाद और सुगंध के लिए डाले जाते हैं।

मेथी के स्वास्थ्य लाभ

क) पाचन तंत्रः मेथी के बीजों का उपयोग पाचन सुधारने के लिए किया जाता है। यह कब्ज, पेट फूलना और गैस की समस्याओं में राहत देता है।

ख) मधुमेह नियंत्रणः मेथी के बीज रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। इसके बीजों में घुलनशील फाइबर होते हैं, जो कार्बोहाइड्रेट के पाचन को धीमा करते हैं और ब्लड शुगर को नियंत्रित रखते हैं।

ग) सूजन रोधीगुणः मेथी में एंटी-इंफ्लेमेटरी गुण होते हैं, जो शरीर में सूजन और दर्द को कम करने में मदद करते हैं।

घ) कोलेस्ट्रॉलः यह कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में मदद करती है, जिससे हृदय संबंधी बीमारियों का जोखिम कम होता है।

ङ) त्वचा और बालः मेथी का उपयोग त्वचा की समस्याओं जैसे मुहाँसे, एक्ज़िमा में किया जाता है। इसके बीजों का पेस्ट बालों की जड़ों को मजबूत बनाता है और बालों का गिरना कम करता है।

मेथी के खेती कि तैयारी

• **जलवायु और मिट्टी**

मेथी की खेती के लिए ठंडी और शुष्क जलवायु सबसे उपयुक्त होती है। जलवायु का आदर्श तापमान 10-25 डिग्री सेल्सियस उपयुक्त होता है। अच्छी जल निकासी वाली बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। मिट्टी का pH 6-7 के बीच होना चाहिए।

• **भूमि की तैयारी**

बुवाई से पहले खेत की गहरी जुताई करें ताकि मिट्टी भुरभुरी और समतल हो जाए। 2-3 बार जुताई के बाद पाटा चलाकर मिट्टी को समतल करें। 20-25 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद मिलाएँ।

• **बीज और बुवाई बीज चयन**

मेथी कि उन्नत खेती के लिए स्वस्थ और प्रमाणित बीजों का उपयोग किया जाना चाहिए। बीज की मात्रा 20-25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है।

बुवाई का समयः रबी और खरीफ़ दोनों सीजन में अक्टूबर-नवंबर तक बुवाई का समय मेथी कि खेती के लिए सबसे उपयुक्त होता है। रबी के मौसम में मेथी की पैदावार ज़्यादा होती है।

बुवाई की विधिः कूड़ विधि द्वारा बीज बोएँ, क्योकि इस विधि में हल जोतकर नाली बना दी जाती है तथा बनायी गयी नाली में सिचाई का पानी छोड़ा जाता है, फिर फसल कि बुवाई कूड़ या मेड पर कि जाती है कूड़ों की दूरी 30 सेमी और पौधों की दूरी 10 सेमी रखें।

• **सिंचाई**

पहली सिंचाई बुवाई के तुरंत बाद करें। फिर दूसरी सिंचाई 20-25 दिन बाद करें और उस के बाद 15-20 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। फूल आने और फली बनने के समय पर विशेष ध्यान दें, इस समय पर्याप्त नमी बनाए रखना आवश्यक हैं।

• **खाद और उर्वरक खाद**

20-25 टन गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर डालें। रासायनिक उर्वरक 20 किलोग्राम नाइट्रोजन, 60 किलोग्राम फॉस्फोरस और 40 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें। नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुवाई के समय और बाकी आधी मात्रा पहली सिंचाई के समय डालें।

• **निराई-गुड़ाई**

बुवाई के 20-25 दिन बाद पहली निराई-गुड़ाई करें। आवश्यकतानुसार 2-3 बार निराइ-गुड़ाई करें ताकि खेत में खरपतवार न हो।

• **रोग और कीट नियंत्रण रोग**

पाउडरी मिल्ड्यू, डाउनी मिल्ड्यू जैसे रोगों से बचाव के लिए सल्फर आधारित फफूँद नाशक का छिड़काव करें। कीट एफिड्स (माहू) और कटवर्म से बचाव के लिए नीम के तेल या अन्य जैविक कीटनाशकों का उपयोग करें।

• **फसल की कटाई**

बुवाई के 90-110 दिन बाद फसल कटाई के लिए तैयार हो जाती है। जब पत्तियाँ और फलियाँ पीली पड़ने लगे, तब कटाई कि जानी चाहिए। कटाई के बाद पौधों को 2-3 दिन धूप में सुखाएँ और फिर दवनी करके बीज अलग करें।

• **भंडारण**

बीजों को अच्छी तरह सुखाकर नमी रहित स्थान पर भंडारित करें। भंडारण के समय कीट और फफूंद से बचाने के लिए नीम के पत्तों का उपयोग करें। कसूरी प्रकार की हरी पत्ती की उपज 90-100 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है जबकि सामान्य प्रकार की उपज 70-80 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

देश में किसान अब धीरे-धीरे जागरूक हो रहे हैं। पारंपरिक फसलों के साथ-साथ वे कम समय में बढ़िया मुनाफा देने वाली फसलों की भी खेती करने लगे हैं। किसान मेथी की खेती कर अच्छी कमाई कर सकते हैं, मेथी की अधिक पैदावार लेने के लिए किसानों को उसको सही समय पर खेती और अच्छी किस्मों का चयन करना बेहद जरूरी है, इसकी कुछ ऐसी किस्में होती हैं, जिसमें न कीट लगते हैं और न ही रोग होता है, इन किस्मों की खेती से किसान अच्छा मुनाफा कमा सकते हैं, मेथी से दो तरीके से लाभ कमाया जा सकता है, मेथी को हरी अवस्था में इस के पत्तों को बेचकर और सूखी अवस्था में इसके दानों को बेचकर किसान बढ़िया कमाई कर सकते हैं।

दहलनी कुल की फसलों में मैथी का भी अपना विशिष्ट स्थान है, मेथी को सब्जी, अचार और सर्दियों में लड्डू आदि बनाने में प्रयोग किया जाता है इसके स्वाद में कड़वापन होता है पर इसकी खुशबू काफी अच्छी होती है, इसमें कई औषधीय गुण

रहती है ऐसे में किसानों के लिए मैथी की खेती फायदे का सौदा साबित हो सकती है, ऐसे में किसान किस्मों का चयन से खेती कर अच्छा उत्पादन और मुनाफा दोनों ले सकते हैं।

मेथी की कुछ उन्नत किस्में

मेथी की कुछ उन्नत किस्में होती है प्रत्येक किस्म की अपनी एक विशेष, विशेषता होती है किसान अपने इलाके की जलवायु को और मुनाफे को देखकर उपयुक्त बीजो का चयन कर सकते है कुछ उन्नत किस्मों का विवरण निम्नवत है

क) आर एम टी 1

इस किस्म के पौधे राजस्थान की सभी स्थानीय किस्मों से ज्यादा पैदावार देने वाली किस्म के रूप में जाने जाते है। इस किस्म के दाने चमकीले और आकर्षक होते हैं, जिनका प्रति हेक्टेयर औसतन उत्पादन 20 क्विंटल के आसपास पाया जाता है। इसके पौधे बीज रोपाई के लगभग 140 से 150 दिन बाद कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं। इस किस्म के पौधों पर जड़ गलन और छाछया रोग का प्रभाव बहुत कम देखने को मिलता है।

ख) कश्मीरी

मेथी की कश्मीरी किस्म की ज्यादातर खूबियाँ हालाँकि पूसा अर्लीबंचिंग किस्म से मिलती जुलती हैं लेकिन यह 15 दिन देर से पकने वाली किस्म है, जो ठंड ज्यादा बरदाश्त कर लेती है, इसके फूल सफेद रंग के होते हैं और फलियों की लंबाई 6-8 सेंटी मीटर होती है, पहाड़ी इलाकों के लिए यह एक अच्छी किस्म है।

ग) ए एफ जी 1

मेथी की इस किस्म के पौधे मध्यम समय में अधिक उत्पादन देने के लिए तैयार किये गए हैं। इस किस्म के पौधे सामान्य ऊंचाई वाले होते हैं, जिनकी पत्तियों की चौड़ाई अधिक पायी जाती है। हरी पत्तियों के रूप में इसके पौधे की तीन बार आसानी से कटाई की जा सकती है, जब कि इस किस्म को हरी पत्तियों और दाने दोनों की उपज लेने के लिए तैयार किया गया है। इस किस्म के पौधे रोपाई के लगभग 135 से 140 दिन बाद कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं, जिनका हरी पत्तियों के रूप में 80 क्विंटल और दानों के रूप में 20 से 25 क्विंटल के आसपास पैदावार प्राप्त होती है। इसके दानो का आकार बड़ा, मोटा और स्वाद कम कड़वा पाया जाता है। इस किस्म के पौधों पर कीट रोगों का प्रभाव कम देखने को मिलता है।

घ) एम. एल. 150

मेथी की इस किस्म को पंजाब में अधिक उगाया जाता है। इस किस्म के पौधे अधिक गहरे हरे दिखाई देते हैं। इसके पौधे पर फलियाँ अधिक मात्रा में पाई जाती हैं। इसके पौधों की एक कटाई के बाद इसकी फसल आसानी से ली जा सकती है। इस किस्म के दाने आकर्षक मोटे, पीले और चमकदार होते हैं। इस किस्म के पौधों की प्रति हेक्टेयर औसतन पैदावार 18 से 20 क्विंटल के बीच पाई जाती हैं।

ङ) पूसा अर्लीबंचिंग

मेथी की इस जल्द पकने वाली किस्म को भी आई. सी. ए. आर. द्वारा विकसित किया गया है, इसके फूल गुच्छों में आते हैं, इसमें 2-3 बार कटाई की जा सकती है। इसकी फलियाँ 6-8 सेंटीमीटर लंबी होती हैं, इस किस्म का बीज 4 महीने में तैयार हो जाता है

निष्कर्ष

मेथी की खेती किसानों के लिए एक लाभकारी और कम लागत वाली फसल है, जो कम समय में अच्छी पैदावार और मुनाफा देती है। यह न केवल पाक और औषधीय उपयोग के लिए महत्वपूर्ण है बल्कि इसकी बाजार में स्थिर माँग भी इसे एक आदर्श फसल बनाती है। यदि किसान सही समय पर बुवाई, उन्नत किस्मों का चयन, उचित खाद-उर्वरक प्रबंधन और सिंचाई विधियों का पालन करें, तो वे हरी पत्तियों और बीजों से अच्छा लाभ कमा सकते हैं। साथ ही जैविक खेती और रोग-कीट प्रबंधन की आधुनिक तकनीकों को अपनाकर वे कम लागत में अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। अतः मेथी की खेती न केवल आर्थिक रूप से फायदेमंद है बल्कि यह स्वास्थ्य, पोषण और औषधीय गुणों के कारण भी महत्वपूर्ण है। यदि इसे वैज्ञानिक तरीकों से किया जाए, तो यह किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

रागी (मडुआ) उत्पादन की उन्नत कृषि तकनीकी

हरिशंकर[1]* एवं प्रदीप कुजुर[2]

[1]कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, जशपुर, छत्तीसगढ़ एवं कृषि विज्ञान केन्द्र जशपुर, छत्तीसगढ़

[2]इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़

पत्राचारकर्ता: hspainkra89agro@gmail.com

परिचय

रागी की खेती मोटे अनाज के रूप में की जाती है। रागी मुख्य रूप से अफ्रीका और एशिया महाद्वीप में उगायी जाती है। जिसको मडुआ, अफ्रीकन रागी, फिंगर बाजरा और लाल बाजरा के नाम से भी जाना जाता है। इसके पौधे पूरे साल पैदावार देने में सक्षम होते हैं। इसके पौधे सामान्य तौर पर एक से डेढ़ मीटर तक की ऊँचाई के पाए जाते हैं। इसके दानो में खनिज पदार्थों की मात्रा बाकी अनाज फसलों से ज्यादा पायी जाती है इसके दानों का इस्तेमाल खाने में कई तरह से किया जाता है। इसके दानों को पीसकर आटा बनाया जाता है, जिससे मोटी डबल रोटी, साधारण रोटी और डोसा बनाया जाता है। इसके दानों को उबालकर भी खाया जाता है। रागी में कैल्शियम की मात्रा सर्वाधिक पायी जाती है जिसका उपयोग करने पर हड्डियाँ मजबूत होती है। रागी बच्चों एवं बड़ों के लिये उत्तम आहार है। प्रोटीन, वसा, फाइबर व कार्बोहाइड्रेट्स रागी में प्रचुर मात्रा में पाये जाते है। इसके अतिरिक्त इसमें महत्वपूर्ण विटामिन जैसे थायमीन, रिवोफ्लेविन, नियासिन एवं आवश्यक अमीनों अम्ल की प्रचुर मात्रा पायी जाती है, जोकि विभिन्न शारीरिक क्रियाओं के लिये आवश्यक होते है। रागीयुक्त आहार कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स वाला होता है। कैल्शियम व अन्य खनिज तत्वों की प्रचुर मात्रा होने के कारण ओस्टियोपोरोसिस से संबंधित बीमारियों तथा बच्चों के आहार (बेबी फुड) हेतु विशेष रूप से लाभदायक होता है।

जलवायु

रागी उष्ण कटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु में अच्छी तरह से उगाया जा सकता है और इसकी खेती 2100 मी., ऊँचाई तक की जा सकती है इसके लिए आवश्यक न्यूनतम तापमान 8-10 डिग्री सेल्सियस है। पौधों के उचित विकास और अच्छी फसल उपज के लिए औसत तापमान 26-30 डिग्री सेल्सियस सबसे अच्छा है।

उपयुक्त मिट्टी

यह फसल समुद्र तल से हिमालय की तलहटी तक व्यापक रूप से अनुकूलनीय है और इसे हर प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है। फसल कुछ हद तक क्षारीयता को सहन कर सकती है। सबसे अच्छी मिट्टी जलोढ, दोमट, रेतीली है साथ ही साथ अच्छी जल निकासी वाली मिट्टी उपयुक्त होती है।

भूमि की तैयारी

नमी संरक्षण के लिए समय पर जुताई करना लाभदायक है। अप्रैल या मई के महीने में मोल्ड बोर्ड हल से एक गहरी जुताई करनी चाहियें है। इसके बाद, देशी हल से दो बार जुताई करना आवश्यक है। बुवाई से पहले, भुरभुरी बीज क्यारी तैयार करने के लिए कई दांतों वाले कुदाल का उपयोग करके कल्टीवेटर से द्वितीयक जुताई आवश्यक है। बुवाई से पहले थोड़ी सी भूमि को समतल करने से बेहतर नमी संरक्षण में मदद मिलती है। बीज बहुत छोटे होते हैं और अंकुरित होने में 5-7 दिन लगते हैं। इसलिए, अच्छे बीज और भूमि की तैयारी बेहतर अंकुरण, खरपतवार की समस्या को कम करने और प्रभावी मिट्टी की

नमी संरक्षण में मदद करती है।

मृदा एवं नमी संरक्षण पद्धतियाँ

मिट्टी की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए गर्मियों में जुताई या पिछली फसल की कटाई के बाद जुताई करना चाहिए। ढलान के आर-पार जुताई की जा सकती है। ढलान और गड्ढों के समतलीकरण के आधार पर 10-12 मीटर के अंतराल पर छोटे-छोटे बंड बनाए जाते हैं। 3.3 से 4.0 मीटर के अंतराल पर एक मृत कुंड खोलना आवश्यक है।

बीज दर

10-12कि.ग्रा./हेक्टेयर (पंक्ति बुवाई) और 4-5कि.ग्रा./हेक्टेयर (रोपाई) की बीज दर की सलाह दी जाती है। ड्रिल बुवाई के लिए 10 कि.ग्रा./हेक्टेयर और रोपाई की स्थिति के लिए पौध नर्सरी उगाने के लिए 5 कि.ग्रा./हेक्टेयर बीज दर इष्टतम पायी गयी है।

बीजोपचार

लघु धान्य फसलों हेतु एजोटोबैक्टर एवं पी.एस.बी. उत्तम जैव उर्वरक हैं। बीज बोने से पहले फफूँदनाशक कार्बेन्डाजिम या थायरम दवा का 3 ग्राम मात्रा प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित करें। बुवाई शुरू करने से पहले उपरोक्त उपचारित बीज को एजोटोबैक्टर एवं पी.एस.बी. तरल जैव उर्वरक के प्रत्येक की 1 मिली, मात्रा-0.2 प्रतिशत, शक्कर/गुड़ के घोल से पतला कर प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करें।

बुवाई का समय

खरीफ के लिए बुवाई का उपयुक्त समय 15 जून से 30 जुलाई और रबी के लिए सितंबर से अक्टूबर है। फसल आमतौर पर खरीफ मौसम में उगाई जाती है। कुछ क्षेत्रों में फसल रबी मौसम में सिंचित परिस्थितियों में उगायी जाती है।

उन्नतशील किस्में

इंदिरा रागी-1, छत्तीसगढ़ रागी-2 (बीआर-36), छत्तीसगढ़ रागी-3, अर्जुन (ओईबी-526), वी एल मंडुआ 379, वी एल मंडुआ 376, वी एल मंडुआ 352, जी पी यु 28, पी आर 202, वी एल 324, वी एल 315, वी एल 149, बी आर 7 एवं वी आर 708 ये रागी की कुछ प्रमुख किस्मे है।

बुवाई की विधि

निराई-गुड़ाई और खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण के लिए पंक्ति में बुवाई करना लाभदायक है। सीड ड्रिल का उपयोग करके पंक्तियों के बीच दुरी 22.5-30.0 से.मी. और पौधों के बीच दुरी 7.5-10.0 से.मी. की दूरी रखते हुए 4.5 लाख/हेक्टेयर की इष्टतम पौधों की संख्या प्राप्त किया जा सकता है। रागी की रोपाई सिंचित स्थिति में की जाती है।

नर्सरी प्रबंधन

एक हेक्टेयर में पौध उगाने के लिए 150 मी^{2} क्षेत्र की आवश्यक होती है। प्रति क्यारी 1.0 किलोग्राम सुपर फॉस्फेट, आधा किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश और आधा किलोग्राम अमोनियम फॉस्फेट और 750 ग्राम जिंक सल्फेट के साथ अच्छी तरह से सड़ी हुई खाद (FYM) की 2-3 टोकरी डालें। हर 3 इंच पर पंक्तियों को समान रूप से बीज बोएँ। बीजों को हर क्यारी में अच्छी तरह से सड़ी हुई खाद और मिट्टी/रेत/पानी से ढक दें। जब पौधे 12-14 दिन के हो जाएँ तो प्रति क्यारी 500 ग्राम यूरिया डालें। 21-25 दिन के पौधे 22.5-25 सेमी की पंक्तियों में रोपाई के लिए आदर्श होते हैं, जिसमें 2 पौधे/हील हों और हील के बीच 10 सेमी की दूरी हो।

खाद एवं उर्वरक

मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग सर्वोत्तम होता है। रागी के लिए मिट्टी में अतिरिक्त मात्रा में कार्बनिक पदार्थ का प्रयोग लाभदायक माना जाता है क्योंकि यह मिट्टी की भौतिक स्थिति को बेहतर बनाने में मदद करता है, जिससे मिट्टी में नमी लंबे समय तक बनी रहती है। बुवाई से लगभग एक महीने पहले 5-10 टन/हेक्टेयर गोबर खाद (एफ. वाई. एम.) का प्रयोग किया जाता है। फसल उर्वरक के प्रयोग के प्रति अच्छी प्रतिक्रिया देती है। रागी के लिए सामान्य अनुशंसा सिंचाई के तहत 50 कि.ग्रा. नाईट्रोजन, 30 कि.ग्रा. P_2O_5 और 20 कि.ग्रा. K_2O प्रति हेक्टेयर और वर्षा आधारित परिस्थितियों में 40 कि.ग्रा. एन, 20 कि.ग्रा. P_2O_5 और 20 कि.ग्रा. K_2O प्रति हेक्टेयर है।

संपूर्ण P_2O_5 और K_2O को बुवाई के समय डालना चाहिए, जबकि नाईट्रोजन को नमी की उपलब्धता के आधार पर दो या तीन विभाजित खुराकों में डालना चाहिए। अच्छी वर्षा और नमी की उपलब्धता वाले क्षेत्रों में अनुशंसित नाईट्रोजन का 50% बुवाई के समय डालना चाहिए और शेष 50% को बुवाई के 25-30 और 40-45 दिनों के बाद दो बराबर भागों में डालना चाहिए। अनिश्चित वर्षा वाले क्षेत्रों में बुवाई के समय 50% और बुवाई के लगभग 35 दिनों के बाद शेष 50% डालने की सिफारिश की जाती है।

जैव उर्वरक

बीजों को *एजोस्पिरिलम ब्रासिलेंस* (नाईट्रोजन फिक्सिंग बैक्टीरिया) और *एस्परगिलस अवामोरी* (फॉस्फोरस सॉल्यूबिलाइजिंग

फंगस) से 25 ग्राम/किग्रा बीज की दर से उपचारित करना लाभदायक है। यदि बीजों को बीज ड्रेसिंग रसायनों से उपचारित करना है, तो बुवाई के समय बीजों को पहले बीज ड्रेसिंग रसायनों से और फिर जैव-उर्वरकों से उपचारित करें।

जैव-उर्वरकों से बीजों को टीका लगाने की प्रक्रिया

फसल के लिए विशेष रूप से जैव-उर्वरक कल्चर का उपयोग 25 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से किया जाना चाहिए। प्रभावी बीज टीकाकरण के लिए चिपचिपा घोल आवश्यक है। इसे 250 मिली पानी में 25 ग्राम गुड़ या चीनी घोलकर 5 मिनट तक उबालकर तैयार किया जा सकता है। इस तरह तैयार घोल को ठंडा किया जाता है। चिपचिपा घोल की आवश्यक मात्रा का उपयोग करके बीजों को अच्छी तरह से फैलाएँ। फिर बीजों में कल्चर डालें और अच्छी तरह मिलाएँ ताकि बीज पर कल्चर की एक महीन परत च-सजय़ जाए। कल्चर-लेपित बीजों को छाया में अच्छी तरह सुखाना चाहिए ताकि बीज आपस में न चिपके। टीका लगाए गए बीजों का उपयोग बुवाई के लिए किया जा सकता है।

सिंचाई प्रबंधन

आम तौर पर खरीफ में रागी की खेती वर्षा आधारित परिस्थितियों में की जाती है। यदि लंबे समय तक सूखा रहता है, तो मिट्टी के प्रकार, मौसम की स्थिति और किस्म की अवधि के आधार पर सिंचाई की आवश्यकता होती है। हल्की मिट्टी के लिए, फसल को 6-8 दिनों में एक बार और भारी मिट्टी के लिए 12-15 दिनों में एक बार सिंचाई करें। सीमित सिंचाई के तहत, फसल को महत्वपूर्ण विकास चरणों जैसे कि जुताई और फूल आने पर सिंचाई की जा सकती है।

महत्वपूर्ण खरपतवार

घास वाले खरपतवारः *इचिनोक्लोआ कोलोनम, एनचिनोक्लोआ क्रूसगुल्ली* (सांवा), *डैक्टाइलोक्टेनियम एजिप्टिकम* (मकरा), *एलुसिन इंडिका, सेटेरिया ग्लौका* (बाजरा), *सिनोडोन डेक्टाइलॉन* (दूब), *फ्राग्माइट्स कर्का* (नरकुल), *साइपरस रोटंडस* (मोथा) और *सोरघम हेलेपेंस* (बंचारी) आम हैं।

चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारः *सेलोसिया अर्जेन्टिया* (चिलीमिल), *कोमेलिना बेंघालेंसिस* (कनकौआ), *फिलैन्थस निरुरी* (हुलहुल), *सोलनम नाइग्रम* (मकोई) और *अमरैन्थस विरिडिस* (चैलाई)।

खरपतवार नियंत्रण

पौधों की वृद्धि और विकास की प्रारंभिक अवस्था में खरपतवारों को नियंत्रित करना आवश्यक है। निराई और गुड़ाई 25 दिन के अंतराल पर हाथ से कुदाली से करनी चाहिए। पंक्ति में बोई गई फसल में 2-3 बार निराई-गुड़ाई और एक बार हाथ से निराई करने का सुझाव दिया जाता है। छिड़काव फसल के लिए दो बार हाथ से निराई करने से खरपतवार का प्रभाव कम हो जाएंगे। सुनिश्चित वषा और सिंचित क्षेत्रों में, पूव-उंद्भव के लिए एट्राजीन @ 250-500 ग्राम/हेक्टेयर (वर्षा आधारित क्षेत्र), ऑक्सीफ्लुरोफेन @ 0.1 लीटर ए.आई./हेक्टेयर (सिंचित क्षेत्र) का छिड़काव किया जा सकता है। बाद में उगने वाले खरपतवारों के लिए 2, 4-डी सोडियम साल्ट @ 0.75 कि.ग्रा. ए.आई./हेक्टेयर का छिड़काव बुवाई के लगभग 20-25 दिन बाद करने की सलाह दी जाती है।

कीट और उनका प्रबंधन

रागी कई कीटों को आकर्षित करता है, जिनमें आर्मी वर्म, कटवर्म, स्टेम बोरर, लीफ एफिड, टिड्डे, ग्रेवीविल शूट फ्लाई और ईयर कैटरपिलर प्रमुख हैं।

आर्मी वर्म और कटवर्म

ये कीट शुरुआती चरणों में दिखाई देते हैं और कटाई तक जारी रहते हैं। कैटरपिलर शुरुआती चरण में पौधों को जड़ से काट देते हैं, जो ऐसा लगता है जैसे पालतू जानवरों ने उन्हें चर लिया हो। ये कीट रात में सक्रिय होते हैं और दिन में पत्थरों और ढेलों के नीचे छिप जाते हैं। पौधे की वृद्धि के बाद के चरणों में, ये कीट पत्तियों को नष्ट करने का काम करते हैं। ये कीट चक्रीय प्रकृति के होते हैं।

नियंत्रण

10 किलो चावल की भूसी +1 किलो गुड़ +1 लीटर क्विनोलफॉस (25% ईसी) युक्त जहरीला चारा डालें। छोटी-छोटी गेंदें तैयार करें और शाम के समय खेतों में बिखेर दें।

लीफ एफिड

यह फसल की बढ़ती अवधि के दौरान होता है। नवजात और वयस्क कोमल पत्तियों और तने से रस चूसते हैं। वे 30 दिनों तक अंकुर अवस्था में गंभीर नुकसान पहुँचा सकते हैं।

नियंत्रण

1.5 मिली/लीटर पानी में डाइमेथोएट 30 ईसी का छिड़काव प्रभावी नियंत्रण देता है। तना छेदक लार्वा तने में छेद कर देता है, जिससे हृदय मृत हो जाता है। नियंत्रण फसल पर मेटासिस्टोक्स 25 ईसी/2 मिली/लीटर पानी का छिड़काव करने से छेदक

पर नियंत्रण में मदद मिलती है।

इयरहेड कैटरपिलर

इयरहेड कैटरपिलर बालियों पर दाने में दुग्ध भरने की अवस्था में दिखाई देते हैं और कटाई तक बने रहते हैं। कैटरपिलर परिपक्व बीजों को काटते हैं और अपने मल और आधे खाए हुए दानों से एक महीन जाल बनाते हैं। यह आगे चलकर सैप्रोफाइटिक कवक को आकर्षित करता है।

नियंत्रण

मैलाथियान डस्ट 5% @ 24 किग्रा/हेक्टेयर या क्विनोलफॉस 1.5% @ 24 किग्रा/हेक्टेयर।

रोग और उनका प्रबंधन

ब्लास्ट (*पाइरिकुलरिया ग्रिसिया*)

विशिष्ट ब्लास्ट घाव हीरे के आकार के होते हैं, जिनका केंद्र ग्रे होता है और पत्ती पर गहरे किनारे दिखाई देते हैं। पौधे का कोई भी हिस्सा जिसमें पत्तियाँ, डंठल और दाने शामिल हैं, संक्रमित हो सकते हैं। संक्रमित ईयरहेड के दाने सिकुड़ जाते हैं और वजन में हल्के हो जाते हैं।

नियंत्रण

प्रतिरोधी किस्मों को उगाकर इसे नियंत्रित किया जा सकता है। बीजों को बुवाई से एक दिन पहले कार्बेन्डाजिम जैसे फफूँद नाशकों से 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। यदि आवश्यक हो, तो नर्सरी में कार्बेन्डाजिम (0.1%) या ट्राइसाइक्लाजोल (0.1%) का छिड़काव करें। फूल आने की अवस्था में ऊपर बताए गए किसी भी फफूँदनाशक का छिड़काव करें और गर्दन और फिंगर ब्लास्ट को नियंत्रित करने के लिए 10 दिन बाद दोहराएं।

भूरा धब्बा

छोटे और मध्यम आकार के भूरे से गहरे धब्बे पत्तियाँ, पत्ती के आवरण और पौधे के अन्य भागों पर दिखाई देते हैं। यदि फसल सूखे या पोषण की कमी के अधीन है, तो नुकसान गंभीर हो सकता है।

नियंत्रण

उचित पोषण और जल प्रबंधन द्वारा रोग को प्रभावी ढंग से प्रबंधित किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार मेन्कोजेब (0.2%) का छिड़काव किया जा सकता है।

कटाई

अगेती किस्मों के फसल लगभग 95 से 110 दिनों में पक जाती है और मध्यम एवं देर से पकने वाली किस्मों के फसल 115 से 125 दिनों में पक जाती है, जो क्षेत्र और किस्म पर निर्भर करता है। बालियों की कटाई साधारणतः हंसिया से की जाती है और बाकी बचे ठूंठ को जमीन के पास से काटा जाता है। वर्षा आधारित परिस्थितियों में कुछ स्थानों पर, बालियों के साथ पूरे पौधे को काटा जाता है, ढेर लगाया जाता है और फिर थ्रेसिंग की जाती है।

उपज

अच्छी तरह से प्रबंधित परिस्थितियों में 20-25 क्विंटल/हेक्टेयर अनाज और 60-70 क्विंटल/हेक्टेयर चारा काटा जा सकता है। रागी का भूसा पौष्टिक चारा बनाता है और इसे धान के भूसे से बेहतर माना जाता है। इसे अच्छी तरह से बनाए गए ढेर में रखकर संरक्षित किया जा सकता है।

निष्कर्ष

रागी में उचित अथवा कम निवेश करके भी उच्च प्रतिफल प्राप्त किया जा सकता है, उत्पादक सामग्री का उपयोग उचित स्तर पर और प्रयोग का सही समय तथा खरपतवारों का समय-समय पर क्रांतिक अवस्था से पहले नियंत्रण, रागी की खेती में उच्च उपज और लाभ प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण है।

संदर्भ

- कृषि दर्शिका 2023, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)।
- प्रमुख खरीफ फसलों की कृषि कार्यमाला, प्रसार बुलेटिन क्र./2021/10।

❖❖

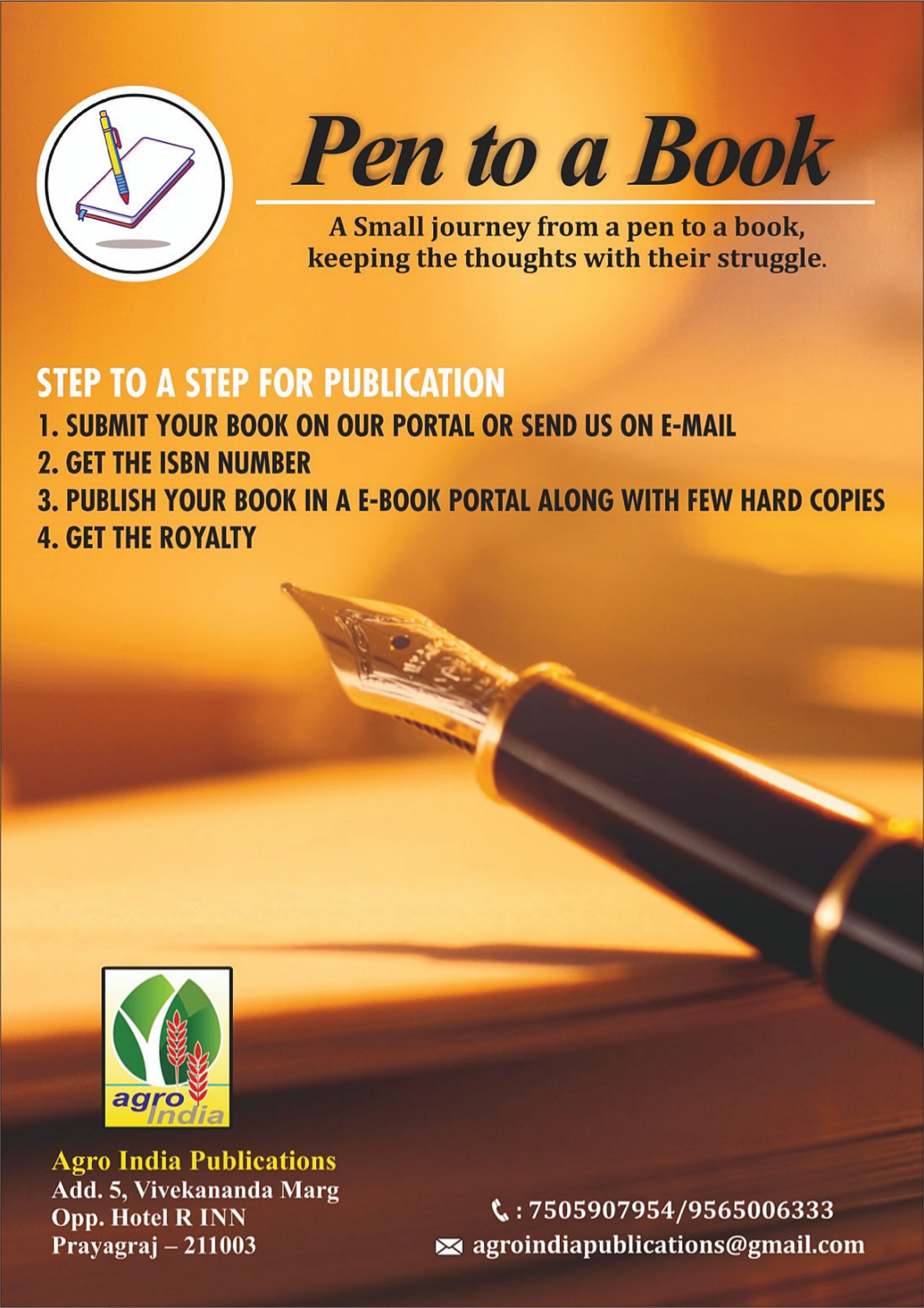
Pen to a Book
A Small journey from a pen to a book, keeping the thoughts with their struggle.
STEP TO A STEP FOR PUBLICATION
1. SUBMIT YOUR BOOK ON OUR PORTAL OR SEND US ON E-MAIL
2. GET THE ISBN NUMBER
3. PUBLISH YOUR BOOK IN A E-BOOK PORTAL ALONG WITH FEW HARD COPIES
4. GET THE ROYALTY
agro India
Agro India Publications
Add. 5, Vivekananda Marg
Opp. Hotel R INN
Prayagraj – 211003
: 7505907954/9565006333
agroindiapublications@gmail.com

ISSN No. 2583-3316

अजोलाः यूरिया के प्रतिस्थापन के लिए एक प्रभावी जैव उर्वरक

योगेश कुमार

मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

पत्राचारकर्ता: yogeshkumarlike@gmail.com

परिचय

यूरिया उर्वरक की दीर्घकालिक व्यवहारिता, नकारात्मक प्रभावों एवं बढ़ती लागत के कारण आज नए समाधानों की आवश्यकता महसूस होने लगी है। अजोला जलीय शैवाल की एक जीन्स है, जिसे अक्सर रासायनिक यूरिया के बजाय खेतों में जैव उर्वरक के रूप में उपयोग किया जाता है। यह बहुत तेजी से विकसित होता है और 10 से 15 दिन के अंदर पूरे गड्ढे में फैल जाता है। इसके बाद 400 से 600 ग्राम अजोला प्रतिदिन बाहर निकाला जा सकता है। अजोला धान के खेतों का उत्पादन बढ़ाने का एक किफायती और पर्यावरण अनुकूल तरीका है। यह न सिर्फ नाइट्रोजन स्थिरीकरण में अपना योगदान देता है बल्कि मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ, कुल नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम की मात्रा बढ़ाकर, मिट्टी की उर्वरता को भी बढ़ाता है। एजोला अपने अपघटन के माध्यम से पोषक तत्वों से भरपूर ह्यूमस प्रदान करके और भौतिक-रासायनिक स्थितियों के साथ-साथ मिट्टी की संरचना में सुधार करके मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखने में योगदान देता है।

जैसा कि देखा गया है, हरित क्रांति के बाद खेतों में रासायनिक उर्वरकों का बहुतायत से प्रयोग होने लगा । लगभग 60 वर्ष बीत चुके हैं, पहले किसी भी फसल को उगाने के लिए जितनी मात्रा में उर्वरक की आवश्यकता होती थी, उतनी मात्रा आज उसी फसल को उगाने के लिए नहीं लगती। इसके अलावा रासायनिक उर्वरकों के लगातार प्रयोग से मिट्टी की उर्वरता भी दिन-ब-दिन कम होती जा रही है। हालात ऐसे हो गए हैं कि लोग अब इसका विकल्प तलाशने लगे हैं। सभी उर्वरकों में से, यूरिया एक नाइट्रोजन युक्त

उर्वरक के रूप में खेत में बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है। यूरिया उर्वरक की दीर्घकालिक व्यवहारिता को लेकर चिंताएँ हैं। 1970 के दशक के बाद से, तेल की बढ़ती लागत के कारण उर्वरक की कीमतें बढ़ गई हैं, जिससे वैश्विक रासायनिक उर्वरक की कीमतों की स्थिरता के बारे में कई सवाल खड़े हो गए हैं। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन और मिट्टी की संरचना, कृषि उत्पादन और खेत से बाहर प्रदूषण पर भारी रासायनिक उर्वरक के उपयोग के दीर्घकालिक नकारात्मक प्रभावों के मुद्दे नजर रखते हुये नए समाधानों की आवश्यकता महसूस होने लगी है।

अजोला, जो खेत में उगाया जाता है और शुष्क भूमि वाली फसलों में मिट्टी संशोधन के रूप में उपयोग किया जाता है, जैविक उर्वरकों और हरी खाद के कई कृषि संबंधी और पर्यावरणीय लाभों को साझा करता है। हालाँकि, अजोला जैसे ऑन-फार्म जैविक उर्वरकों की आर्थिक व्यवहारिता श्रम, व्यय और भूमि उपयोग की उच्च अवसर लागत से काफी बाधित हो सकती है। अजोला की खेती के लिए पूंजी की आवश्यकताएँ काफी कम होती हैं, क्योंकि अजोला को छोटे जल ग्रहण क्षेत्रों, टैंकों या सिंचाई प्रणालियों की नहरों में उगाया जा सकता है और इसे खेतों में डालकर मिट्टी में मिलाया जा सकता है। अजोला उगाने की ये विधियाँ भूमि और श्रम लागत में पर्याप्त बचत प्रदान कर सकती हैं। अजोला उत्पादन को अनुकूलित करने के लिए अतिरिक्त खर्चों में, अजोला को घोंघे और मेंढक जैसे कीटों से बचाने के लिए कीटनाशक, राख और फॉस्फेट उर्वरक को शामिल कर सकते हैं।

अजोला में पोषक तत्त्व की मात्रा

ताज़ा अजोला में लगभग 90 से 95 प्रतिशत जल होता है। जबकि विघटित अजोला में निम्नलिखित पोषक तत्त्व होतें हैं

नाइट्रोजन = 4 से 6 प्रतिशत (प्रोटीन – 25 से 37 प्रतिशत)

फ़ॉस्फ़रोस = 0.5 से 0.9 प्रतिशत

पोटाशियम = 2 से 6प्रतिशत

कैल्शियम = 0.4 से 1 प्रतिशत

मैग्नेशियम = 0.5 प्रतिशत

लोहा = 0.06 से 0.16 प्रतिशत

हम अजोला को खेत में हरी खाद के रूप में कैसे उपयोग कर सकते हैं?

अजोला का उपयोग जल मग्नधान के खेतों में हरी खाद के रूप में सबसे अधिक किया जाता है। इसे एक अकेली फसल के रूप में उगाया जा सकता है और फिर धान की रोपाई से पहले शुरुआती खाद के रूप में मिलाया जा सकता है या इसे किसी अन्य स्थान पर ले जाया जा सकता है और फसलों के ऊपर उपयोग किया जा सकता है। इसे दो फसलों के बीच में भी उगाया जा सकता है और चावल की रोपाई के बाद खाद के रूप में मिलाया जा सकता है।

ध्यान रखने योग्य बातें

- अजोला को खेत में लगाते समय पानी की गहराई 8 से 10 सेंटीमीटर के बीच में रखें।
- अच्छी उपज के लिए तापमान 20 से 28 डिग्री सेल्सियस तथा मृदा पीएच 6 से 8 के बीच में रखें।
- हमेशा खेत में पानी बनाएँ रखें तथा जल्दी वृद्धि के लिए 25 से 50 किलोग्राम/प्रति हेक्टेयर प्रति सप्ताह सुपरफॉस्फेट का छिड़काव करें।
- पत्ती खाने वाले कीड़े तथा घोंगा से बचने के लिए यूराडॉन-3 जी, 2 से 3 किलोग्राम/प्रति हेक्टेयर प्रति सप्ताह का छिड़काव करें।

जब तापमान अनुकूल हो, पानी की गहराई पर्याप्त हो तथा फॉस्फोरस उर्वरक का सही इस्तेमाल किया गया हो तब अजोला 3 से 4 दिन में अपने वजन का दुगना हो जाता है। इसकी उपज लगभग 10 टन/प्रति हेक्टेयर होती है जोकि सूखने पे 1 टन प्रति हेक्टेयर अजोला प्राप्त होता है। यह लगभग 40 किलोग्राम नाइट्रोजन 5 से 9 किलोग्राम फॉस्फोरस तथा 20 से 60 किलोग्राम पोटाशियम देता है।

अजोला जैव उर्वरक के उपयोग

नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमताः यह देखा गया है कि अजोला की एक फसल लगभग 20 से 25 दिनों में चावल की फसल को 20 से 40 किलोग्राम/प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन की आपूर्ति करती है और अजोला-अनाबेना प्रणाली की अनुमानित नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता 1.1 किलोग्राम/प्रति हेक्टेयर प्रति दिन है। यह भी पाया गया कि अजोला में आमतौर पर कम कार्बन नाइट्रोजन अनुपात होता है, जो इसे अन्य जैविक उर्वरकों की तुलना में तेजी से खनिज बनाने की अनुमति देता है। जब अजोला को जलजमाव वाली मिट्टी में उपयोग किया जाता है, तो अजोला में लगभग 60 से 80 प्रतिशत नाइट्रोजन दो सप्ताह के भीतर खनिज में बदल जाता है। कार्बनिक नाइट्रोजन को अकार्बनिक रूप में खनिजीकृत करने के लिए अजोला को उष्णकटिबंधीय जलवायु में 30 से 60 दिन या समशीतोष्ण जलवायु में 60 या उससे अधिक दिन की आवश्यकता हो सकती है।

समस्याग्रस्त मिट्टी का प्रबंधनः अजोला उन मिट्टी को बहाल करने में मदद कर सकता है, जो नमक से प्रभावित हुई हैं। अजोला के सावधानीपूर्वक उपयोग से कम कार्बनिक पदार्थ

ISSN No. 2583-3316

वाली अर्धशुष्क मिट्टी के सुधार में काफी मदद मिल सकती है।

कार्बन पृथक्करण में भूमिकाः यह स्वाभाविक रूप से एंथ्रोपोजेनिक गतिविधियों और कार्बन के भंडारण को संदर्भित करता है। अपनी प्रकाश संश्लेषण प्रकृति के कारण, अजोला सौर ऊर्जा के समग्र प्रकाश संश्लेषण रूपांतरण और कार्बन पृथक्करण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अजोला कार्बन-डाइऑक्साइड को स्थलीय पौधों की तुलना में लगभग 10 से 50 गुना तेज गति से स्थिर करता हैं।

जल प्रबंधनः धान के खेतों और जल निकायों की सतह पर बनी अजोला की मोटी परत के कारण कम वाष्पीकरण होता है।

खरपतवार प्रबंधनः अजोला घने, लगभग प्रकाश-रोधी सतह बनाकर कुछ जलीय खरपतवारों के विकास को रोकता है, जो सूर्य के प्रकाश को अवरुद्ध करता है तथा मिटटी में उपस्थित खनिज का उपयोग कर मुख्य फसल के पैदावार को कम करता है।

पशुओं के लिए चाराः पूरी तरह से परिपक्व अजोला में लगभग 26% कच्चा प्रोटीन और 16% कच्चा रेशा शामिल होता है। आसानी से पचने योग्य उच्च प्रोटीन सामग्री, विटामिन और खनिज, साथ ही कम वसा और कार्बोहाइड्रेट सामग्री के कारण, यह मछली, मुर्गी और मवेशियों के लिए एक उत्कृष्ट चारा है।

मिट्टी की स्थिरता और उर्वरता में समग्र भूमिकाः मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ, कुल नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम की मात्रा बढ़ाकर, अजोला मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है। अजोला अपने अपघटन के माध्यम से पोषक तत्वों से भरपूर ह्यूमस प्रदान करके और भौतिक-रासायनिक स्थितियों के साथ-साथ मिट्टी की संरचना में सुधार करके मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखने में योगदान देता है।

निष्कर्ष

रासायनिक यूरिया उर्वरक की दीर्घकालिक व्यवहारिता, नकारात्मक प्रभावों एवं बढ़ती लागत के कारण नए विकल्प के तौर पे अजोला धान के खेतों का उत्पादन बढ़ाने का एक किफायती और पर्यावरण अनुकूल तरीका है, जिसे यूरिया जैसे नाइट्रोजनयुक्त उर्वरक के प्रतिस्थापन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। किसान मिट्टी की उर्वरता में सुधार कर सकते हैं, टिकाऊ कृषि पद्धतियों को प्रोत्साहित कर सकते हैं और इसके नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता का उपयोग करके रासायनिक उर्वरकों पर अपनी निर्भरता को कम कर सकते हैं।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

मृदा परीक्षण हेतु मृदा नमूना लेने की वैज्ञानिक विधि

राजबहादुर, अजय श्रीवास्तव, अक्षय श्रीवास्तव एवं रौशन कुमार*

मृदा विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड

पत्राचारकर्ता: raushankumar2778@gmail.com

परिचय

भारत एक कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है इसकी लगभग 50% से अधिक आबादी कृषि पर निर्भर है और यह स्पष्ट है कि कृषि अर्थव्यवस्था के फलने फूलने के लिए मिट्टी की गुणवत्ता को नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता है। किसानों और सरकार की अपेक्षाओं को पूरा करने एवं फसल की पैदावार के लिए मिट्टी की गुणवत्ता एक निश्चित स्तर की होनी चाहिए। लेकिन तेजी से बढ़ते औद्योगिकीकरण, बढ़ती जनसंख्या और रासायनिक उर्वरकों के अनुपयुक्त तरीके एवं अनुचित मात्रा में प्रयोग के कारण मिट्टी की गुणवत्ता खराब हो सकती है और इसलिए मिट्टी की गुणवत्ता और उर्वरता का परीक्षण किया जाना चाहिये।

मृदा परीक्षण क्यों आवश्यक है

मृदा परीक्षण महत्वपूर्ण है क्योंकि यह फसल उत्पादन को अनुकूलित करने, मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी का निदान करने और पोषक तत्वों की कमी को सुधारने की दशा में काम करने में मदद करता है। मृदा परीक्षण किसानों को मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी एवं असन्तुलन के बारे में सूचित करता है और निदान किये गये मुद्दों से निपटने के लिए विशिष्ट उर्वरकों या मृदा पोषकों को अपनाने में उनका मार्गदर्शन करता है यह परीक्षण हमें फसल बुवाई से पहले ही निवारक और सुधारात्मक उपाय करने में सक्षम बना सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप अंतिम उपज समझौता रहित होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि भारत में मिट्टी परीक्षण प्रासंगिक है।

मृदा परीक्षण कराने का उद्देश्य यह होता है कि ज्ञात हो सके कि आवश्यक पोषक तत्वों की कितनी मात्रा मृदा में उपलब्ध होता है, जिसके आधार पर विभिन्न फसलों के लिये उर्वरकों की मात्रा का निर्धारण किया जा सके हैं।

फसल को पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है उपजाऊ मिट्टी में बुनियादी पौधों के लिए सभी पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम उपस्थित होते है, साथ ही कम मात्रा में आवश्यक अन्य पोषक तत्व भी जैसे सल्फर, लोहा, जस्ता, मैग्नीशियम, मैगनीज, ताँबा और कैल्शियम होते है, आमतौर पर उपजाऊ मिट्टी में कुछ कार्बनिक पदार्थ भी होते हैं, जो मिट्टी की संरचना, मिट्टी की नमी बनाये रखने और पोषक तत्व बनाये रखने मे सुधार करते हैं।

स्वस्थ मृदा में पी.एच. 6.5 से 7.5 के बीच होता है। मिट्टी में सभी आवश्यक पोषक तत्वों का पर्याप्त स्तर नही होता है। पौधों द्वारा कुछ पोषक तत्व ग्रहण करने के लिए मिट्टी की दशा प्रतिकूल हो सकती है। एक बुद्धिमान किसान मिट्टी की देखभाल एवं प्रबन्धन समुचित तरीके से करता है।

प्रयोगशाला में मृदा परीक्षण कि जाँच

मृदा परीक्षण, मृदा संशाधन प्रबन्धन का एक अनिवार्य घटक है। मृदा परीक्षण हेतु एकत्रित किये गय प्रत्येक नमूना, उस क्षेत्र का सच्चा प्रतिनिधि होना चाहिए, जिस क्षेत्र का नमूना लिया जा रहा है। प्रयोगशाला विश्लेषण से प्राप्त परिणामों की उपयोगिता, नमूना एकत्रिकरण की विधि की सटीकता पर निर्भर करती है, इसलिए बड़ी संख्या में नमूना का संग्रह उचित है। तब मिट्टी के प्रकार और मिट्टी में पोषक तत्वों की बात आती है तो हर क्षेत्र अलग होता है मिट्टी का नमूना और परीक्षण आपको पौधे के लिए उपलब्ध पोषक तत्वों के बारे में जानकारी प्राप्त कराता है।

मृदा नमूना तैयार करने के आवश्यक उपकरण

- कुदाल या वरमा (पेच या ट्यूब)
- खुरपी
- कोर सैंपलर
- पोस्ट-होल ऑगर
- पेंचदार ऑगर
- मृदा प्रतिदर्शी बन्द नलिका
- खरल और मूसल
- बाल्टी
- छलनी 2 मि.मी.
- पॉलीथीन या नमूना बैग

मृदा नमूना लेने के लिए खुरपी, फावड़ा या ऑगर का प्रयोग किया जाता है नम और गीली मृदा का सैम्पल लेने के लिए नलिका ऑगर, खुरपी या फावड़ा प्रयोग किये जाते है। पेंचदार ऑगर कठोर/सूह्वी मृदा से सैम्पल लेने के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं। जबकि पोस्ट होल ऑगर गीली मृदा जैसे धान के खेत से सैम्पल लेने के लिए प्रयोग किया जाता है। मृदा प्रोफाइल के लक्षणों के अध्ययन के लिए मृदा प्रतिदर्शी नलिका (खुली या बन्द) प्रयोग में लायी जाती है। यह अल्प नमी वाली भुरभुरी मृदा में अच्छा काम देती है लेकिन शुष्क और अधिक नम मृदा में इसका उपयोग सन्तोशजनक नही होता है।

मृदा नमूना एकत्रित करने का उपयुक्त समय

- परती अवधि के दौरान मिट्टी का नमूना एकत्रित करें।
- खडी फसल में पौधों के बीच से नमूना एकत्रित करें।
- जिगजैग पैटर्न में कई स्थानों पर से नमूना करण एकरूपता सुनिश्चित करता है।
- फील्ड जो देखने, उत्पादन और पिछले प्रबन्धन प्रथाओं में समान है को एक एकल नमूना इकाई में समूहित किया जा सकता है।
- उन खेतों से नमूने अलग-अलग एकत्र करें, जो रंग ढलान, जल निकासी, पिछले प्रबन्धन प्रथाओं जैसे चूने का प्रयोग, जिप्सम अनुप्रयोग, उर्वरक व फसल प्रणाली आदि में भिन्न हो।
- मृत खाचे, गीले स्थानों, बाढ़ के क्षेत्रों, पेड़ों के जड़ों, खाद के ढेरों और सिंचाई चैनलों में नमूना नहीं लेना चाहिए।
- ऊथली जड़ वाली फसलों के लिए 15 सेमी. गहराई तक नमूने एकत्र करें। गहरी जड़ वाली फसलों के लिए 30 सेमी. गहराई तक नमूने एकत्रित करें।

मृदा नमूना लेने की विधि

- सामान्यतः मृदा परीक्षण 3 वर्ष में एक बार अवश्य ही करवाना चाहिए, परन्तु पर्वतीय क्षेत्रों एवं पॉलीहाऊस की मृदाओं के लिए प्रत्येक वर्ष परीक्षण कराना उत्तम रहता है।
- मृदा नमूना ऐसा हो जो पूर्ण इकाई क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करे तथा यदि क्षेत्र बहुत बड़ा है तो क्षेत्र को ढाल, रंग, मृदा गठन, फसल उत्पादन तथा प्रबन्धन की समानता के आधार पर छोटी इकाईयों में बाँट ले। तथा इन क्षेत्रों से पृथक-पृथक नमूना एकत्रित करें।
- एक समान क्षेत्र जिसकी इकाई एक एकड़ हो तो उस क्षेत्र में आड़ा तिरछा सिद्धान्त के आधार पर 8-10 अलग-अलग स्थानों को चिन्हित कर लेना चाहिये। प्रत्येक चिन्हित स्थानों पर V आकार का गड्ढ़ा खुरपी या फावडे की सहायता से बनाना चाहिये, जिसकी ऊर्ध्वाधर गहराई 6 इंच या 15 सेमी. होनी चाहिये, गड्ढ़ा बनाने से पूर्व मृदा की सतह को साफ कर लेना चाहिये। इस प्रकार से एकत्रित मृदा नमूनों को प्राथमिक मुदा नमूना कहते हैं और इसकी मात्रा 250 से 300 ग्राम के आसपास होनी चाहिये।
- इन सभी प्राथमिक मृदा नमूनों को हवादार एवं छायादार स्थान पर सूखने के लिए साफ कागज/पॉलीथीन या लकड़ी के पट्टे पर फैला देना चाहिये। जब सभी मृदा नमूना अच्छी तरह से हवा में सूख जायें, तो उनको लकडी के बेलन से पीस लेना चाहिये लेकिन पीसते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि कंकड़ पत्थर एवं अन्य वाह्य पदार्थ को नहीं पीसना चाहिये सिर्फ मिट्टी के ढेलों को ही पीसना चाहिये तदोपरान्त 2 एमएम. छलनी से भी मृदा नमूनों को छान लेना चाहिये, जिससे कि कंकड़ पत्थर मृत जड़ें .एवं अन्य वाह्य पदार्थ अलग हो जाये।
- अब छने हुये सभी मृदा नमूनों को भली भाँति अच्छी प्रकार से मिला लेना चाहिये, जब छने हुये सभी प्राथमिक मृदा नमूने अच्छी प्रकार से मिल जाये तो उसकी एक ढेरी बना लेना चाहिये।
- इस मृदा ढ़ेरी को चार बराबर भागों में बाँट लेना चाहिये तथा आमने-सामने के दो हिस्सो को निकाल लेना चाहिए और बचे हुए दो हिस्से को पुनः भली भाँति मिलाना चाहिए और उसका दुबारा ढ़ेरी बना देना चाहिए और इसको चार बराबर भागो में बाँट कर आमने-सामने के हिस्सों को निकाल लेना चाहिए और पुनः भली भाँति मिलाना चाहिए और यह प्रक्रिया तब तक करनी चाहिए कि अन्त में करीब 350 से 500 ग्राम तक मृदा नमूना बच जाये। इस प्रक्रिया को बवाटरिंग विधि कहते हैं। इस प्रकार से प्राप्त मृदा नमूने को प्रतिनिधि नमूना कहते हैं।

मृदा नमूना संरक्षित करने का तरीका

मृदा नमूना संरक्षित करने के लिए निम्नलिखित उपायों को

अपनाना चाहिए

• नमूना संख्या निर्दिष्ट करे और इसे प्रयोगशाला मिट्टी नमूना रजिस्टर में दर्ज करें।

• छलनी से गुजरने वाली सामग्री को इकट्ठा करे और प्रयोगशाला विश्लेषण के लिए उचित लेबलिंग के साथ एक साफ प्लास्टिक कंटेनर या पॉलीथीन बैग में स्टोर करें।

• कार्बनिक पदार्थ के निर्धारण के लिए एक प्रतिनिधि उप नमूने को पीसकर 0.2 एमएम छलनी के माध्यम से छालना वांछनीय है।

• यदि नमूने सूक्ष्म तत्वों के विश्लेष्ण के लिए है, तो जस्ता, ताँबा, लौह के संदूषण से बचने के लिए नमूने को सम्भालने में अधिक देखभाल की आवश्यकता होती है। पीतल की छलनी से बचना चाहिए और नमूनों के संग्रह, प्रंस्करण और भण्डारण के लिए स्टेनलेसस्टील या पॉलीथीन सामग्री का उपयोग करना बेहतर है।

• खेत में नमी की मात्रा का ऑकलन हेतु नमूना संग्रह के तुरन्त बाद सीलबन्द पॉलीथीन बैग में रखना चाहिए।

• मृदा परीक्षण 1 महीने के अन्दर अवश्य करवा लेना चाहिए, क्योंकि अत्यधिक पुराना मृदा नमूना होने पर मृदा परीक्षण से समुचित लाभ नही मिलता है।

• बाग लगाने हेतु नमूना 2 मी0 की गहराई तक ऊपरी सतह से जैसे अमरूद, फालसा, आम इत्यादि की बागवानी के लिए 0-30, 30-60, 60-90 से.मी. एवं कटहल इत्यादि के लिए 90-120, 120-180 से.मी. की गहराई 8-10का गड्ढ़ा करना चाहिए और स्थानो से मृदा नमूना लेना चाहिए।

सावधनियाँ

मृदा नमूना एकत्रित करते समय निम्न सावधानियाँ बरतनी चाहिए

• निचली या खाद के ढेर या उर्वरक दी गयी जगहों, वृक्षों तथा मकानों के निकटवर्ती स्थलों से मृदा का नमूना एकत्रित नही करना चाहिए।

• नमूना एकत्रित करने के लिए साफ थैली का प्रयोग कीजिये। खाद या उर्वरक की थैली का प्रयोग नही करना चाहिए।

• यदि खेत में फसल खड़ी है, तो मृदा सैम्पल फसल की दो लाइनो के बीच से लेना चाहिए।

• प्रत्येक थैली में एक लेबिल लगा देते हैं जिस पर सतह की गहराई, कृषक का नाम, गाँव का नाम, खेत संख्या आदि सूचनायें लिख देते हैं।

मृदा परीक्षण के लाभ

• यह किसान को मिट्टी के वर्तमान स्वास्थ्य और इसे कैसे सुधारा जाये इसकी जानकारी देना है।

• मृदा परीक्षण से उर्वरकों का प्रयोग समुचित किया जाता है।

• मृदा परीक्षण के परिणामस्वरूप सीमित मात्रा में निशेचन होता है।

• मृदा क्षरण से बचाया जा सकता है।

• उपजाऊ मिट्टी वाले किसान दुनिया की बढ़ती आबादी को अनाज खिलाने में योगदान दे सकते हैं।

• वर्तमान समय में मिट्टी पर पहले से कहीं अधिक दबाव है। दुनिया की लगातार बढ़ती आबादी का पेट भरने के लिए, अधिक उपज पैदा करने के लिए उपजाऊ मिट्टी की जरूरत होती है।

• बेहतर मृदा स्वास्थ्य का अर्थ है अधिक फसलें, जिससे सम्भावित रूप से दुनिया की खाद्य सुरक्षा सम्बन्धी समस्याऐं समाप्त हो जायेंगी। और इससे लाखों लोगों को बेहतर जीवन का लाभ मिलेगा।

• मृदा प्रबन्धन में मृदा परीक्षण पहला कदम है। यह गतिविधि किसानों को बहुमूल्य जानकारी देती है, जो उन्हे मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करने में मदद करती है।

• स्वस्थ मिट्टी स्वस्थ फसल का संकेत देती है।

• मिट्टी की बनावट, मिट्टी की नमी, मिट्टी का रसायन इस बात के निर्धारक है कि कौनसी फसलें उगायी जा सकती है। और खेत कितनी उपज को पैदा कर सकता है।

निष्कर्ष

मृदा परीक्षण उत्पादकों और किसानों के लिए उनकी भूमि के स्वास्थ्य और उत्पादकता का मूल्यांकन करने के लिए एक आवश्यक उपकरण है। मिट्टी की बनावट, संरचना और पोषक तत्वों की मात्रा का विश्लेषण करके, उत्पादक फसल प्रबंधन प्रथाओं, जैसे सिंचाई, निषेचन और मिट्टी संशोधन के बारे में सूचित निर्णय ले सकते हैं। मृदा परीक्षण के परिणामों का उपयोग संभावित मृदा स्वास्थ्य समस्याओं की पहचान करने और फसल की पैदावार करने के लिए किया जाता है। मृदा परीक्षण आपकी भूमि के स्वास्थ्य और आपके कृषि कार्य की सफलता के लिए महत्वपूर्ण है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

फल-सब्जियों के बेकार जाने वाले भागों का उपयोग

अरुण प्रकाश* एवं विनय प्रकाश

कृषि विज्ञान विभाग, डॉल्फिन (पीजी) बायोमेडिकल और प्राकृतिक विज्ञान संस्थान, देहरादून, उत्तराखंड

पत्राचारकर्ता: apkohli101@gmail.com

परिचय

फल तथा सब्जियों का उपयोग करने के पश्चात व उत्पाद बनाते समय उनके कुछ भाग बच जाते हैं, जैसे छिलके, बीज व बीज के चारों ओर का भाग (कोर), गुठली तथा निचोड़ने के बाद बचा हुआ अवशेष। इन बचे हुए भागों से विभिन्न तरह के खाद्य पदार्थ बनाए जा सकते हैं, जो हमारी सेहत के लिए फायदेमंद होते है इससे हमे ऐसे खनिज तत्व विटामिन एवं अन्य पोषक प्रदार्थ मिलते है, जिससे हमारे शरीर की वृद्धि भी होती है और साथ ही साथ छिलके को पशुओ के आहार के रूप में भी इसका उपयोग किया जाता है।

फल सब्जियों के बचे हुये छिलके का उपयोग

यहाँ पर कुछ फल-सब्जियों के बचे हुए भागों से खाद्य पदार्थ बनाने का वर्णन किया गया है

क) केलाः केला को उच्च फाइबर व प्रोटीन, कैल्शियम, फॉस्फोरस का स्रोत माना जाता है। पके केले का गुदा उपयोग में लाने के बाद उसका छिलका बच जाता है, जिसे कारखानों में ले जाकर उससे कैल्शियम, फॉस्फोरस व फाइबर निकाला जाता है तथा केले का फाइबर पशुओं के लिए भी बहुत लाभदायक होता है जिसे हम सीधे कच्चे छिलके के रूप में भी पशुओं को खिला सकते हैं। केले के छिलके में पेक्टिन भी अच्छी मात्रा में मौजूद होता है जो प्रसंस्कृत खाद्य प्रदार्थो के तैयार करने में काम आता है।

ख) तरबूजः तरबूज गर्मियों में खाया जाने वाला बहुत उपयोगी फल है, जो कि पानी से भरपूर होता है इसमें 90-92% पानी होता है, जो कि गर्मियों में डिहाइड्रेशन से बचाता है। तरबूज के गुदा का उपयोग करने के बाद छिलके से बाहरी हरे भाग को हटाकर अंदर के गुदा की तरफ वाले भाग से बहुत प्रसिद्ध उत्पाद 'टूटी फ्रूटी' तैयार किया जाता है तथा बाहरी भाग हरे भाग को पशुओं के चारे के रूप में उपयोग किया जाता है।

ग) अमरूदः अमरूद की जैली बनाते समय पेक्टिन निचोड़ प्राप्त कर लेने के बाद जो गूदा बच जाता है उससे अमरूद पनीर बनाया जा सकता है।

घ) नींबू व संतरे वर्गीय फलः बड़े कारखानों में इनसे उत्पाद बनाते समय पर्याप्त मात्रा में छिलके बच जाते हैं। इनको सुखाकर व्यावसायिक पेक्टिन बनाया जाता है। इसके छिलके से तेल भी निकाला जाता है तथा छिलके का कॉस्मेटिक्स

इंडस्ट्री में फेस पैक और फेस स्क्रब बनाए जाते है।। इनसे मुरब्बा तथा कैंडी और विभिन्न तरह की मिठाई पाई एवं टार्ट आदि बनाई जाती है। संतरे का रस निकालने के बाद बचे हुए भाग से सिरका बनाया जाता है। नींबू के रस से कार्डियल बनाने के लिए रस को जब साइफन द्वारा निथार लिया जाता है, तो पात्र की पेंदी में जो नींबू का गूदा बच जाता है, उसे साइट्रिक अम्ल बनाने के काम में लाया जाता है। संतरे व नींबू के छिलकों से मार्मलेड भी तैयार किया जाता है जोकि भारत के साथ साथ बाहरी देशों में भी बहुत प्रचलित है।

ङ) अंगूरः इसके उत्पाद बनाते समय छिलका, बीज तथा डंठल बच जाते हैं। इसके डंठल से टारटर क्रीम प्राप्त की जाती है तथा बीजों से तेल निकाला जाता है। बाकी बचे भागों को पशु आहार के रूप में प्रयोग किया जाता है।

च) अनानासः अनानास से उत्पाद बनाते समय छिलका तथा अन्दर का सख्त भाग (कोर) बच जाता है। इनको किण्वित करके ऐल्कोहॉल बनाया जाता है। इसके कोर से कैण्डी बनाई जा सकती है। इसके बचे हुए अवशेषों से सिरका, साइट्रिक अम्ल तथा पशु आहार के लिए उपयोग में लाया जाता है।

छ) आमः आम की डिब्बाबन्दी तथा अन्य उत्पाद बनाते समय छिलके तथा गुठली बच जाती है। इन्हें पानी में धोकर प्राप्त रस से सिरका बनाया जाता है।

आम की गुठली की गिरी से एक प्रकार का आटा तैयार किया जाता है। इसे विभिन्न तरह के उपयोग में लाया जाता है। आटा बनाने के लिए गिरी को पीसकर पानी में घोल लेते हैं। इसे लगभग 24 घंटे स्थिर रख देने से ताकि पूरा पानी निथर जाए। अब पानी को निथार कर आटे को एक मोटे कपडे की पोटली में लटका देते हैं ताकि पूरा पानी निथर जाए। इसके बाद इसे धूप में सुखाकर आटा तैयार कर लेते हैं।

ज) पपीताः पपीते के बीजों से तेल निकाला जाता है साथ ही कॉस्मेटिक इंडस्ट्री में इसके बीजो से फेस स्क्रब तैयार किया जाता है। कच्चे पपीते के दूध से पपैन नामक उपयोगी पदार्थ बनाया जाता है, जो विभिन्न दवाओं के बनाने में काम आता है।

झ) खुबानीः इस फल से जैम, चटनी तथा डिब्बाबन्दी करने के बाद गुठलियाँ बच जाती हैं। इसकी अनेक किस्मों की गुठली की गिरी बादाम की तरह मीठी होती है। इसकी गिरी से तेल भी निकाला जाता है तथा बची हुई खली को पशुओं को खिलाया जाता है।

ञ) आडूः खुबानी की तरह आडू की गुठली की गिरी से भी तेल निकाला जाता है।

ट) सेबः सेब के उत्पाद बनाते समय बचे हुए अवशेष से सिरका तथा साइडर (सेब का खमीर उठा रस) तथा अन्य पदार्थ बनाए जाते हैं। इससे पेक्टिन बनाई जाती है।

ठ) मटरः डिब्बाबन्दी तथा सुखाने के लिए दाने निकालने के बाद बचे हुए छिलकों तथा पौधों को पशु आहार के उपयोग में लाया जाता है।

ड) गोभीः फूलगोभी व पत्तागोभी को उपयोग में लाने के बाद डण्ठल बच जाती है, जिसको हम फेक देते है लेकिन डण्ठल बहुत तरह के सूप व सुखाकर पशु आहार बनाये जाते है।

ढ) मूलीः मूली का उपयोग करने के बाद उसके छिलके सुखाकर पशु आहार में मिलाया जाता है जोकि पशुओ के लिए अति उत्तम माना जाता है।

ण) चुकंदरः चुकंदर की उपयोग में लाने के बाद उसके छिलके बच जाती है, जिससे बहुत तरह के प्राकृतिक रंजक बनाये जाते है, जो कि खाद्य व अन्य जैसे वस्त्रो की रंगाई मे प्रयोग ला सकते है।

निष्कर्ष

फल सब्जियों के उपयोग करने के बाद उसके अवशेष बच जाते है जिसे हम फेंक देते हैं, लेकिन इन फल सब्जियों के बेकार जाने वाले भागों का बहुत सारे उपयोग कर सकते व काफी सारे उत्पाद भी तैयार कर सकते है। यदि उपरोक्त लेख में बताये गये तरीको का उपयोग कर लिया जाय तो हर कोई बेहतर तरीके से अपने फल सब्जियों का उपयोग करके अपने खर्चे को कम कर सकता है, तथा फल सब्जियों के बेकार जाने वाले भागों का नये नये उत्पाद बना कर व्यवसाय करके भी आजीविका का अच्छा स्रोत बना सकता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

दलहनी फसल (चना) में कृषि पारिस्थितीकीय विश्लेषण आधारित कीट प्रबंधन

चंचल सिंह[1]*, श्याम सिंह[2], नरेन्द्र सिंह[3] एवं नन्द किशोर वाजपेई[4]

[1एवं 2]कृषि विज्ञान केंद्र, [3एवं 4]प्रसार निदेशालय, बाँदा कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, बाँदा

पत्राचारकर्ता: chanchalsingh9@gmail.com

परिचय

विश्व के दलहन उत्पादक देशों में भारत का प्रमुख स्थान है। कुल उत्पादन का लगभग 25 प्रतिशत भागीदारी भारत देश ही सुनिश्चित करता है। भारत देश में उगाई जाने वाली फसलों में दलहनी फसलों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। देश के कुल दलहन उत्पादन में लगभग 75% सहयोग प्रमुख दलहन उत्पादक प्रदेशों जैसेः मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, कर्नाटक एवं आंध्र प्रदेश का है। इन फसलों की महत्ता को दृष्टिगत रखते हुए संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 2016 को अंतर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष के रूप में घोषित किया था। पोषण वैज्ञानिकों के अनुसार हमारे संतुलित भोजन में 80 ग्राम दाल/व्यक्ति/दिन आवश्यक है। परन्तु वर्तमान में इसकी उपलब्धता मात्र 38 ग्राम/व्यक्ति/दिन ही है।

उर्द, मूँग, अरहर, लोबिया इत्यादि की खेती खरीफ मौसम में, जबकि चना, मटर, मसूर, राजमा इत्यादि की खेती रबी मौसम में सफलतापूर्वक किया जाता है। देश के कुछ क्षेत्रों में उर्द, मूँग एवं लोबिया की खेती जायद मौसम में भी की जाती है। दलहनी फसलें वातावरण में उपलब्ध नत्रजन को मृदा में स्थिर करके इसको अधिक उर्वर बनाने में अपना सहयोग प्रदान करती है। उक्त फसलों में चना का अपना प्रमुख स्थान है, जिसे देश के विभिन्न भागों में सफलतापूर्वक उगाया जाता है। यह मुख्यतः दो प्रकार का होता है – 1) देशी व 2) काबुली। देशी चना दाल के लिए जबकि काबुली चना छोले बनाने में उपयोग किया जाता है।

FAOSTAT, 2015 के अनुसार विश्व के कुल चने का 67.41 प्रतिशत उत्पादन भारत द्वारा किया जाता है। चने के उत्पादन को प्रभावित करने वाले प्रमुख जैविक एवं अजैविक कारकों में कीड़ों का प्रमुख स्थान है। इनमें से प्रमुख हानिकारक कीड़ों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः

चने का फली भेदक (*Helicoverpa armigera Hübner; Noctuidae: Lepidoptera*)

यह बहुभक्षी (Polyphaguse) कीट लगभग सभी दलहनी फसलों जैसेः चना, मटर, उर्द, मूँग, अरहर इत्यादि के अतिरिक्त कपास, बाजरा, मक्का, मूँगफली, सोयाबीन, सूर्यमुखी आदि पर अपना जीवन निर्वाह करता है। सूँड़ी अपने प्रारम्भिक

का जीवनचक्र 15 दिनों या इससे कम समय में पूरी हो सकती है। इनका शिशु एवं वयस्क एक समान ही दिखाई देते है, केवल शरीर के माप में अन्तर होता है।

लीफ माइनर (*Chromatomyia horticola* Goureau; Agromyzidae: Diptera)

यह भी दलहनी फसलों का एक महत्वपूर्ण कीट है, जो प्रमुखतया पौध की पत्तियों को क्षति पहुँचाते है। इस कीट की सूंड़ियाँ पत्तियों के क्लोरोफिल युक्त ऊतकों को खाती है। परिणामस्वरूप पत्तियों पर एक चक्राकार सुरंग का निर्माण हो जाता है। इसके गम्भीर प्रकोप की अवस्था में पत्ती सूखकर गिर जाती है। इस कीट की गर्भित मादा पत्ती की ऊपरी सतह पर अण्डे रखती है, जिससे लगभग 4 दिनों पश्चात सूँड़ी बाहर निकलकर पत्तियों से अपना भोजन ग्रहण करना प्रारम्भ कर देती है। सूंड़ियाँ एक सप्ताह में परिपक्व होकर लगभग 3 मिलीमीटर लम्बी हो जातीं है। इसके बाद अपने चारो ओर एक आवरण बनाकर या तो मिट्टी में या पत्ती के सुरंग में ही प्यूपा अवस्था मे परिवर्तित हो जातीं है, जिससे लगभग एक सप्ताह बाद वयस्क मक्खी निकलकर अपनी अगली पीढ़ी को आगे बढ़ाती है। इस प्रकार इनका सम्पूर्ण जीवनचक्र 18-21 दिनों में पूर्ण हो जाता है।

दाल भृंग (*Callosobruchus chinensis* Linnaeus; Chrysomelidae: Coleoptera)

यह कीट दलहन भण्डार गृहों की एक प्रमुख समस्या है, यदि इसका समुचित प्रबन्धन नहीं किया गया, तो शत प्रतिशत क्षति की सम्भावना रहती है। इस कीट की हानिकारक अवस्था ग्रब होती है, जो दानों में छिद्र बनाकर उसमे उपस्थित सम्पूर्ण प्रभाग को खाकर नष्ट कर देती है। पूर्ण रूप से विकसित ग्रब दानों के अन्दर ही प्यूपा अवस्था में परिवर्तित होकर पड़ी रहती है। दानों के अन्दर से कीट पूर्ण रूप से विकसित होकर उससे बाहर निकलती है। गर्भित मादा दलहनी अनाजों के ऊपरी सतह पर अण्डे रखती है, जो सफेद रंग के छोटे–छोटे धब्बों के रूप में दिखाई देते है। एक मादा अपने जीवनकाल में लगभग 90 अण्डे रख सकती है। इनसे लगभग 6 दिनों पश्चात ग्रब बाहर निकलते है तथा अनाजों में प्रवेश करके अपना भोजन ग्रहण करते है।

कृषि पारिस्थितिकीय तन्त्र के अनुकूल प्रबन्धन

वर्तमान में भारत एवं अन्य विकासशील देशों के कृषक पौध सुरक्षा हेतु मुख्यतः हानिकारक रसायनों पर ही निर्भर रहते है, जिससे खेती के इस अवयव पर अधिक खर्च की सम्भावना बनी रहती है। इसके परिणामस्वरूप किसान भाइयों की आय पर प्रतिकूल प्रभाव परिलक्षित होता है। पिछले कई वर्षों से लगातार हो रहे हानिकारक कृषि रसायनों के उपयोग से कृषि पारिस्थितिकीय तन्त्र में हानिकारक कीटों की जटिल समस्या उत्पन्न हो गायी है। जिसका प्रमुख कारण इस प्रकार हैः

- कीटों में कीटनाशियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता का विकास।
- कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं का विनाश।
- द्वितीयक स्तर के हानिकारक कीटों का प्राथमिक स्तर पर स्थानांतरण।
- पर्यावरणीय सन्तुलन पर प्रतिकूल प्रभाव।
- खाद्य पदार्थों पर कृषि रसायनों के अवशेष की मात्रा में वृद्धि इत्यादि।

उपरोक्त समस्याओं तथा पारिस्थिकीय तन्त्र के अनुकूलन को ध्यान में रखते हुए, इसके विश्लेषण पर आधारित समेकित नाशीजीव प्रबन्धन का विस्तृत विवरण इस प्रकार है।

FAO, 2002 द्वारा आधुनिक समेकित नाशीजीव प्रबन्धन की परिभाषा में कृषि पारिस्थिकीय तन्त्र के विश्लेषण पर विशेष महत्व दिया गया है, जिसके अनुसार पौध सुरक्षा हेतु कृषक द्वारा लिया गया निर्णय, एक वृहद प्रक्षेत्र आकलन (जैसेः नाशीजीव, इनके प्राकृतिक शत्रु, मृदा स्थिति, पौध स्वास्थ्य, मौसम एवं इनके आपसी समन्वयन) पर आधारित होना चाहिए, क्योंकि पौधे का स्वास्थ्य का निर्धारण पर्यावरण के भौतिक (जैसेः तापमान, आर्द्रता, वर्षा, हवा, मृदा में उपस्थित पोषक तत्व इत्यादि) एवं जैविक (जैसेः परभक्षी व परपोषी कीट, व्याधि कारक, खरपतवार इत्यादि) कारकों द्वारा किया जाता है। यह सभी कारक पर्यावरणीय सन्तुलन (शाकाहारी जीवों एवं उनके प्राकृतिक शत्रुओं का अनुपात, P:D Ratio) में अपनी–अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इस परिस्थितिकीय तन्त्र के सभी भौतिक एवं जैविक कारकों का आपसी ताल-मेल, समेकित नाशीजीव प्रबन्धन में विशेष भूमिका रखता है। दलहनी फसलों की विभिन्न अवस्थाओं पर समेकित नाशीजीव प्रबन्धन की प्रमुख संस्तुत गतिविधियाँ इस प्रकार हैः

अ) बुवाई से पूर्व

- रबी फसलों की कटाई के बाद ग्रीष्म कालीन गहरी जुताई करे।
- खेत में अच्छी तरह सड़ी गोबर की खाद/फार्मयार्ड मेन्योर, FYM/नीम की खली का उपयोग करे।
- जहाँ तक सम्भव हो फसलों की बुवाई एक साथ सुनिश्चित

करे, साथ ही साथ एक क्षेत्र के लिए एक ही संस्तुत प्रजाति का भी चुनाव करे। ध्यान इस बात का रखें कि संस्तुत प्रजाति नाशीजीवों के प्रति सहनशील हो।

• दलहनी फसलों में गेंदा के फूल/ अलसी/ धनियाँ/ सरसों/ गेहूँ/ बाजरा/ सूर्यमुखी को अन्तःवर्ती फसल के रूप में लगाने से फली भेदक सहित अन्य कीटों एवं सूत्रकृमि का प्रकोप फसल पर अपेक्षाकृत कम होता है।

• फसल की बुवाई ससमय (माह-अक्तूबर तक) कर लेने से फली भेदक कीट के प्रकोप से चने की फसल को बचाया जा सकती है।

ब) बीज एवं बुवाई

• अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन देने वाली, क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत उन्नतशील प्रजाति का चुनाव करें।

• बीज खरीदते समय किसान भाई बीज की शुद्धता, जमाव का प्रतिशत, पैकेजिंग की तिथि इत्यादि का अवलोकन करें।

• खेत की तैयारी के समय संस्तुत पोषक तत्वों की मात्रा का उपयोग करें, साथ ही कार्बनिक खादों का भी संस्तुत अनुपात में उपयोग सुनिश्चित करें।

• फसल की बुवाई समय से करें, बुवाई के समय क्षेत्र विशेष के नाशीजीवों से बचाव के लिए संस्तुत बीज शोधन अवश्य सुनिश्चित करें।

• बुवाई के समय फसल ज्यामिति के अनुसार पंक्ति-पंक्ति एवं पौध-पौध की दूरी बनाए रखने का प्रयत्न अवश्य करें।

• हानिकारक कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं को संरक्षण प्रदान करने के उद्धेश्य से इनको आकर्षित करने वाले पौधों को अन्तः फसल के रूप मे लगाना चाहिए।

स) वानस्पतिक वृद्धि की अवस्था

• किसान भाई यह सुनिश्चित करें कि बीज बुवाई के 6–8 सप्ताह तक खरपतवारों की बढ़वार फसल से अधिक नहीं होने पाये, फसल में उगे हुए खरपतवारों का प्रबन्धन विभिन्न यान्त्रिक विधियों से किया जाना चाहिए।

• चने की फसल में बुवाई के 30 दिनों पश्चात पौध के ऊपरी प्रभाग को तोड़ देना चाहिए, जिससे पौधों में शाखाएँ अधिक निकलती है तथा नाशीजीवों की संख्या अपेक्षाकृत कम आकलित की गयी है।

• आवश्यकतानुसार फसल की हल्की सिचाई फौहरी प्रणाली से करना अधिक लाभप्रद रहता है।

• सम्पूर्ण फसल काल में आने वाले कीटों की सतत निगरानी करते रहें, जिसके लिए फेरोमोन ट्रैप या प्रकाश पाश का उपयोग किया जा सकता है।

• खेत में परभक्षी चिड़ियों को आश्रय (Bird perche) प्रदान करना चाहिए।

• निगरानी के क्रम में यदि यह ज्ञात हो कि अमूक कीट के आर्थिक क्षति स्तर (चने के फली भेदक हेतु 5 वयस्क/ट्रैप/ दिन या फसल की वानस्पतिक अवस्था पर 2.0 सूँड़ी/मीटर पंक्ति या फली बनने की अवस्था पर 1.0 सूँड़ी/मीटर पंक्ति) पर पहुँचने कि सम्भावना है तो कृषि रसायन का उपयोग संस्तुत मात्रा में किया जा सकता है।

द) पुष्पन एवं फली बनने की अवस्था

• प्रक्षेत्र की निगरानी, फेरोमोन ट्रैप/प्रकाश पाश (Light Trap) से करते रहना चाहिए।

• दलहनी फसलों के प्रमुख कीटों के लिए संस्तुत रसायन इस प्रकार हैः Indoxacarb 14.5 SC@ 0.0145% (1.0ml/L) या Chlorantraniliprole 18.5SC@ 0.0028% (0.15ml/L) या Emamectin benzoate 5SG @ 0.002% (0.2g/L) या Novaluron 10EC@ 0.015% (1.5ml/L) या Thiomethoxam 25WP@0.0025% (0.1g/L) या *Bacillus thuringiensis var. kurstaki* 0.5 WP@ 2.0 kg/ha या *Beauveria bassiana* 1.15 WP@ 2.5 kg/ha या Nuclear Polyhedrosis Virus of *Helicoverpa armigera* 2.0AS@ 250-500 ml/ ha की दर से 500 लीटर घोल बनाकर एक हेक्टेयर प्रक्षेत्र का छिड़काव किया जा सकता है।

य) कटाई के उपरान्त

• यदि फसल किसी कीट के प्रकोप से ग्रसित हो तो ऐसे फसल अवशेष नष्ट कर देना चाहिए, जिससे आगामी फसल में सम्बन्धित कीट के दुष्प्रभाव को कम किया जा सके।

• उत्पादित दलहन को सूर्य के तेज धूप में सूखाकर एवं भलि-भाँति साफ सफाई करके ही भण्डारण करना चाहिए।

निष्कर्ष

उपरोक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए किसान भाई दलहन फसलों की उन्नत खेती करे तो हानिकारक कीटो द्वारा पहुँचायी गयी क्षति को कम किया जा सकता है। साथ ही साथ कृषि की लागत कम रखते हुए किसान भाईयों की आय भी अपेक्षाकृत बढ़ाई जा सकती है, जिससे किसान भाईयों के जीवन स्तर में उत्तरोत्तर सुधार किया जा सकता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

पपीता की खेती में विषाणुजनित रोगों का सही प्रबंधन

के. के. मिश्र[1]* एवं अंकिता राव[2]

[1]उद्यान विज्ञान विभाग, [2]सस्य विज्ञान विभाग

नारायण कृषि विज्ञान संस्थान, गोपाल नारायण सिंह विश्वविद्यालय, जमुहार, सासाराम, रोहतास, बिहार

पत्राचारकर्ता: kkmishrababbu@gmail.com

परिचय

पपीता में कई विषाणु रोग लगते है लेकिन सबसे प्रमुख है पपीता का रिंग स्पॉट विषाणु रोग एवं पपीता का पत्रकुंचन विषाणु रोग है। पपीता का रिंग स्पॉट विषाणु रोग, पपीता का सबसे खतरनाक रोग है यह अफ्रीका को छोड़कर, सभी पपीता उत्पादक देशों में पाया जाता है। पपीते के विषाणु रोगो के कारण पौधों की वृद्धि कम होने लगती है, जिससे संक्रमित पौधों की ताकत कम हो जाती है संक्रमित पौधों पर फूल कम आने से फूल भी कम लगते है कुछ फल खराब एवं स्वादहीन हो जाते है। विषाणु के संक्रमण के कारण फल में दिखने वाले रिंग की वजह से इस रोग को रिंग स्पॉट कहा जाता है इस रोग के कई नाम है जैसे- पपीता का डिस्टारशन रिंग स्पाट या मोजैक। इस रोग के विषाणु कैरीकेसी कुकुरबिटेसी एवं चेनोपोडीएसी कुल के पौधों पर ही पाये जाते हैं।

लक्षण

यह रोग PRV-P के द्वारा उत्पन्न होता है। PRV-P भी कई तरह के होते हैं, जिसकी वजह से इसकी उग्रता भी घटते-बढ़ते रहती है। इस रोग में पत्तियों पर गहरे हरे रंग के धब्बे बनते हैं, जो प्रायः धँसे होते हैं। इस रोग को रिंग के द्वारा आसानी से पहचाना जा सकता है। यह रिंग फलों पर ज्यादा स्पष्ट दिखाई देते हैं। जैसे-जैसे फल परिपक्व तथा पीला होने लगता है। रिंग अस्पष्ट होने लगती है। फलों पर इस रोग की वजह से कुबड़ापन उभर आता है। इस रोग में सर्वप्रथम उपर से दूसरी या तीसरी पत्ती पीली होती है। पत्तियों पर मोजैक के लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। पत्तियों की नसें स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। पत्तियाँ कटी-फटी-सी दिखाई देती है। रोग की उग्र अवस्था में पत्तियों पतले धागों के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। तनों एवं पर्ववृन्तों पर तैलीय खरोंच जैसे निशान भी इस रोग की वजह से देखे जा सकते हैं। इस रोग की उग्रता की वजह से पत्तियों, पर्णवृन्त एवं आक्रान्त पौधे सामान्य पौधों की तुलना में छोटे तथा कभी-कभी बौने से दिखाई देते हैं। इस रोग की वजह से पपीता के सभी उम्र के पौधे समान रूप से आक्रान्त होते हैं। रोगग्रस्त पौधे से स्वस्थ पौधों तक इस रोग के विषाणु सभी प्रकार के एफिड के द्वारा पहुँचते हैं। विषाणु

ISSN No. 2583-3316

के स्वस्थ पौधों तक पहुँचने के तकरीबन 2-3 सप्ताह के पश्चात् इस रोग के लक्षण दिखाई देते हैं। यदि इस रोग से पपीता कम उम्र में ही आक्रान्त हो गया तो ऐसे पौधों में फल नहीं लगते हैं, लेकिन ऐसे पौधे जल्दी मरते भी नहीं हैं।

PRV-P का जीव विज्ञान

इस रोग के विषाणु लम्बे, घुमावदार, डण्डे जैसे कण होते हैं इस विषाणु के कण का एफिड की विभिन्न प्रजातियों द्वारा रोगग्रस्त पौधे से स्वस्थ पौधों संचरण तक होता है। पपीता के रिंग स्पॉट विषाणु को दो प्रकार में बाँटा जा सकता है पहला PRV-P एवं दूसरा PRV-W। PRV-P नामक विषाणु पपीता के अतिरिक्त कद्दूकुल के अन्य पौधों को भी इस रोग से आक्रान्त कर सकते हैं जबकि PRV-W केवल कद्दूकुल के पौधों को ही आक्रान्त कर सकता है। इससे पपीता आक्रान्त नहीं होता है। PRSV की इन दोनों प्रभेदों को Serologically अलग नहीं किया जा सकता है। इन्हें इनके परपोषी द्वारा ही अलग-अलग पहचाना जा सकता है।

रोग का प्रसार

इस रोग के विषाणु रोगग्रस्त पपीता के पौधे से स्वस्थ पपीता तक एफिड की विभिन्न प्रजातियों द्वारा पहुँचाया जाता है। जैसे ही एफिड आक्रान्त पौधे पर रस चूसने के लिए बैठता है ठीक उसी समय इस रोग के विषाणु एफिड के मुँह में चले जाते हैं। इस कुल प्रक्रिया में मात्र कुछ सेकेण्ड लगते हैं। तत्पश्चात् यहाँ से जब एफिड स्वस्थ पौधे पर पहुँचता है इस रोग के विषाणु को उस पौधे में प्रवेश करा कर उसे आक्रान्त कर देता है। इस रोग के विषाणु जल्द से जल्द रोगग्रस्त पौधे से एफिड के मुँह में तथा वहाँ से स्वस्थ पौधों तक पहुँच जाते हैं। यह सब कार्य बहुत ही जल्दी सम्पन्न होता है। इस प्रक्रिया में जितना अधिक समय लगेगा, विषाणु के अन्दर रोग उत्पन्न करने की क्षमता में कमी आती जायेगी। इस रोग का प्रसार एफिड के अलावा अन्य किसी कीड़े द्वारा नहीं होता है। इस रोग के विषाणु मृदा या मृत पपीता के पौधे में जीवित नहीं रह सकते हैं। यह रोग बीजजनित भी नहीं है इसका मतलब इस रोग का प्रसार बीज द्वारा नहीं होता है। इस रोग का प्रसार रोगग्रस्त पौधों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने से हो सकता है। एक बार इस रोग से आक्रान्त होने के पश्चात् इस रोग से छुटकारा किसी प्रकार से सम्भव नहीं है।

विषाणु संचरण

एफिड अपने परपोषी से रस चूसता है। एफिड बहुत सी विषाणुजनित रोगों के संचरण में एक संवाहक की भूमिका अदा करता है। सीधे तौर पर एफिड द्वारा फसलों का उतना नुकसान नहीं होता है, जितना की उसके द्वारा फैलाये गये रोगों द्वारा फसलों का नुकसान होता है। उपरोक्त तथ्य पपीता के रिंग स्पाट विषाणु के सन्दर्भ में अक्षरशः लागू होती है। जब एफिड रोग से आक्रान्त पौधों से रस चूसता है ठीक उसी समय विषाणु के कण, एफिड के मुँह में चले आते हैं एवं जब यह एफिड रस चूसने के लिए स्वस्थ पौधे पर पहुँचता है ठीक उसी समय रस चूसने के क्रम में विषाणु के कण को स्वस्थ पौधे में पहुँचा देता है। इस कुल प्रक्रिया में एक मिनट से भी कम समय लगता है। एफिड के सन्दर्भ में नर एवं मादा के मध्य प्रजनन के उपरान्त अण्डा देने की प्रक्रिया शुरू हो, ऐसा आवश्यक नहीं है। एफिड की मादा सीधे मादा निम्फ को जन्म दे सकती है। प्रौढ़ मादा 8-10 नवजात निम्फ/दिन दे सकती है। इस तरह से एक वर्ष में एफिड की कई पीढ़ी पैदा हो सकती है। पपीता की रिंग स्पाट बीमारी पपीता के रिंग स्पॉट विषाणु द्वारा होती है। सभी पपीता उत्पादक राष्ट्रों में यह पपीता की सबसे घातक बीमारी है। इस बीमारी का संचरण मुख्यतः एफिड की विभिन्न प्रजातियों द्वारा होती है।

पपीता का पत्रकुंचन विषाणु रोग

यह रोग Geminivims द्वारा होता है। इसमें पत्तियों के शीर्ष भाग पूर्ण रूप से नीचे की ओर मुड़ जाते हैं जिनकी वजह से न तो पौधों में बढ़वार हो पाती है, न ही उन पर फल लग पाते हैं। पत्तियों के डंठल भी विकृत हो जाते हैं। पत्तियाँ और उनकी नसें मोटी हो जाती हैं। प्रभावित पत्तियाँ कटी-फटी एवं चमड़े जैसी मोटी हो जाती है। इस रोग से आक्रान्त पेड़ में फल नहीं लगते हैं यदि फल लग भी गये तो समय पूर्व गिर जाते हैं, पत्तियाँ गिर जाती हैं। पौधों की वृद्धि रूक जाती है। लगभग 70% तक यह रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलाया जाता है।

ISSN No. 2583-3316

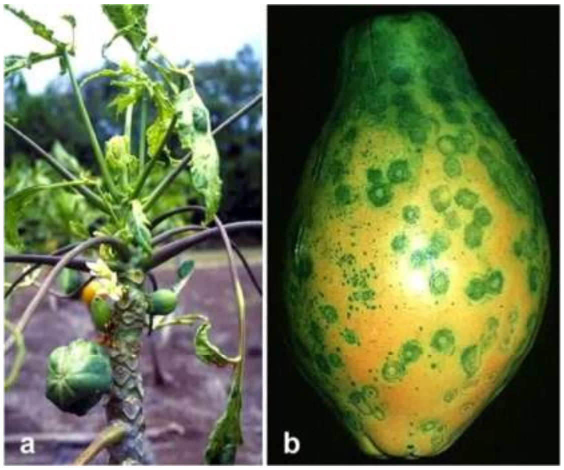

रोगों का प्रबन्धन कैसे करें?

• पपीता रिंग स्पाट विषाणु रोग से सहिष्णु पपीता की प्रजातियों को उगाना चाहिए। पपीता की विभिन्न प्रजातियों का परीक्षण इस बीमारी के विरूद्ध किया गया एवं पाया गया कि पूसा ड्वार्फ प्रजाति सभी प्रजातियों में सर्वश्रेष्ठ है। बीमारी के बावजूद उन्नत कृषि के द्वारा प्रथम वर्ष 45-55 कि.ग्रा./ पौधा बाजार योग्य फल लिया जा सकता है।

• नेट हाउस/ पाली हाउस में बिचड़ा उगाना चाहिए जो इस रोग से मुक्त हो। क्योंकि नेट हाउस/ पाली हाउस में एफिड को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है।

• बिचड़ों की रोपाई ऐसे समय करनी चाहिए जब पंख वाले एफिड न हों या बहुत कम हो क्योंकि इन्हीं के द्वारा इस रोग का फैलाव होता है। प्रयोगों द्वारा पाया गया है कि बिहार में मार्च अप्रैल एवं सितम्बर-अक्टूबर रोपाई हेतु सर्वोत्तम है।

• पपीता को छोटी-छोटी क्यारियों में लगाना चाहिए एवं क्यारियों के मेंड़ पर ज्वार, बाजड़ा, मक्का या ढैंचा इत्यादि लगाना चाहिए ऐसा करने से एफिड को एक क्यारी से दूसरे क्यारी में जाने में बाधा उत्पन्न होता है इसी क्रम में एफिड के मुँह में पड़ा विषाणु का कण के अन्दर रोग उत्पन्न करने की क्षमता में कमी आती है या समाप्त हो जाती है।

• जैसे-ही कहीं भी रोगग्रस्त पौधा दिखाई दे तुरन्त उसे उखाड़ कर जला दें या गाड़ दें, नहीं तो यह रोग उत्पन्न करने में स्रोत का कार्य करेगा।

• एफिड को नियंत्रित करना अतिअवाश्यक है क्योंकि एफिड के द्वारा ही इस रोग का फैलाव होता है। इसके लिए आवश्यक है कि इमीडाक्लोप्रीड 1 मि.ली./2 लीटर पानी में घोलकर निश्चित अन्तराल पर छिड़काव करते रहना चाहिए।

• पपीता को वार्षिक फसल के तौर पर उगाना चाहिए। ऐसा करने से इस रोग के निवेशद्रव्य में कमी आती है तथा रोगचक्र टूटता है। बहुवर्षीय रूप में पपीता की खेती नहीं करनी चाहिए।

•पपीता की खेती उच्च कार्बनिक मृदा में करने से भी इस रोग की उग्रता में कमी आती है।

• मृदा का परीक्षण कराने के उपरान्त जिंक एवं बोरान की कमी को अवश्य दूर करना चाहिए। ऐसा करने से फल सामान्य एवं सुडौल प्राप्त होते हैं।

• नवजात पौधों को सिल्वर एवं काले रंग के प्लास्टिक फिल्म से मल्चिंग करने से पंख वाले एफिड पलायन कर जाते हैं जिससे खेत में लगा पपीता इस रोग से आक्रान्त होने से बच जाता है।

• उपरोक्त सभी उपाय अस्थायी हैं, इससे इस रोग की उग्रता को केवल कम किया जा सकता है समाप्त नहीं किया जा सकता है। इन उपायों को करने से रोग, देर से दिखाई देता है। फसल जितनी देर से इस रोग से आक्रान्त होगी उपज उतनी ही अच्छी प्राप्त होगी।

• इस रोग का स्थायी उपाय ट्राँसजेनिक पौधों का विकास है। इस दिशा में देश में कार्य आरम्भ हो चुका है। विदेशों में विकसित ट्राँसजेनिक पौधों को यहाँ पर ला कर उगाया गया, तब ये पौधे रोगरोधिता प्रदर्शित नहीं कर सकें।

निष्कर्ष

पपीते के उत्पादन में रोग एक महत्वपूर्ण सीमित कारक है। इन रोग की आवृति स्थानीय परिस्तिथियों पर निर्भर करती है और प्रभावी प्रबंधन इन पर निर्भर करता है रोगज़नक़, मेज़बान पौधे, पर्यावरण और उनकी परस्पर क्रिया का संपूण ज्ञान है। रोग के कारण कारक की पहचान अत्यंत महत्वपूर्ण है तथा रोग प्रबंधन विकल्पों का चयन किया जाना आवश्यक है। सामान्य तौर पर, रोग प्रबंधन रणनीतियाँ इसमें विभिन्न पद्धितियाँ शामिल है, जिनमे पौधो की प्रतिरोधकता, रोगनीरोधी और उपचारात्मक उपाय शामिल है। इस लेख में विस्तृत जानकारी के साथ निदान और नियंत्रण की प्रक्रियाओं पर जोर देने का प्रयास किया गया। पपीते के साथ काम करने वाले लोगो, छात्रों और पेशेवरो के लिये यह लेख साहयक साबित होगी।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

कृषि में ई-गवर्नेंस और ICT किसानों के लिए डिजिटल क्रांति और सरकारी सेवाओं की सहज पहुँच

अंजना गुप्ता* एवं आर. एल. राउत

कृषि विज्ञान केंद्र (बालाघाट), मध्य प्रदेश

पत्राचारकर्ता: bloggersp2020@gmail.com

परिचय

कृषि भारत की अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा है और भारतीय समाज का अधिकांश हिस्सा कृषि पर निर्भर है। हालाँकि, कृषि क्षेत्र को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिनमें कृषि के लिए उचित संसाधनों की कमी, बाजार मूल्य की अस्थिरता, मौसम की अनिश्चितता और सरकारी योजनाओं तक किसानों की पहुँच की कमी जैसी समस्याएँ शामिल हैं। इन समस्याओं को हल करने के लिए, ई-गवर्नेंस और सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) का उपयोग किया जा रहा है। ई-गवर्नेंस का उद्देश्य सरकारी सेवाओं को नागरिकों तक अधिक सुलभ, पारदर्शी और प्रभावी तरीके से पहुँचाना है। ICT तकनीक के माध्यम से, सरकार अब किसानों को अधिक प्रभावी तरीके से सेवाएँ प्रदान कर सकती है। इस लेख में हम देखेंगे कि ई-गवर्नेंस और ICT किस प्रकार किसानों के लिए सरकारी सेवाओं को सुलभ और आसान बना रहे हैं।

ई-गवर्नेंस और ICT का महत्व

ई-गवर्नेंस का अर्थ है सरकार के द्वारा सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) का उपयोग करके सरकारी प्रक्रियाओं और सेवाओं को नागरिकों तक पहुँचाना। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिससे सरकारी कार्यों में पारदर्शिता बढ़ती है और नागरिकों को सरकारी सेवाओं तक आसान और त्वरित पहुँच मिलती है। ICT के माध्यम से सरकार सरकारी योजनाओं, सेवाओं और सुविधाओं को डिजिटल प्लेटफॉर्म के जरिए किसानों तक पहुँचाती है। इसमें मोबाइल एप्लिकेशन, इंटरनेट, ड्रोन, डेटा एनालिटिक्स और अन्य आधुनिक तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

कृषि क्षेत्र में ICT के लाभ

क) सरकारी योजनाओं तक आसान पहुँचः ICT के माध्यम से किसानों को विभिन्न सरकारी योजनाओं के बारे में समय पर जानकारी मिलती है। पहले किसानों को सरकारी योजनाओं, अनुदान और ऋण के लिए सरकारी कार्यालयों के चक्कर लगाने पड़ते थे, लेकिन अब मोबाइल ऐप्स और वेबसाइट्स के जरिए उन्हें सीधे योजना से संबंधित जानकारी प्राप्त हो सकती है। उदाहरण के लिए, प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना (PM & KISAN) के तहत किसानों

को सीधे उनके बैंक खाते में वित्तीय सहायता दी जाती है। इसके लिए अब किसानों को किसी सरकारी दफ्तर जाने की जरूरत नहीं है, बल्कि वे अपने मोबाइल फोन के माध्यम से योजना से जुड़ी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

ख) मौसम और जलवायु संबंधी जानकारीः कृषि में मौसम का अत्यधिक महत्व है। ICT की मदद से किसानों को मौसम पूर्वानुमान, जलवायु परिवर्तन और कृषि संबंधित जोखिमों के बारे में सटीक जानकारी मिलती है। इससे वे अपने कार्यों को समय पर और सही तरीके से नियोजित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, भारत सरकार ने कृषि मौसम सेवा के तहत मोबाइल एप्लिकेशन लॉन्च किया है, जिसके माध्यम से किसानों

को आगामी मौसम की जानकारी मिलती है। इसके जरिए किसान फसल बोने, सिंचाई करने और कीटनाशकों का उपयोग करने के लिए उचित समय का चयन कर सकते हैं।

ग) कृषि उत्पादों के बाजार मूल्य की जानकारीः एक और महत्वपूर्ण समस्या जिसका सामना किसानों को करना पड़ता है, वह है कृषि उत्पादों के मूल्य का अस्थिर होना। कभी-कभी किसानों को उनके उत्पाद का सही मूल्य नहीं मिलता है और उन्हें मंझले व्यापारियों द्वारा कम मूल्य पर अपने उत्पाद बेचने के लिए मजबूर किया जाता है। ICT के माध्यम से, किसानों को उनके उत्पादों के वास्तविक बाजार मूल्य की जानकारी मिलती है। ई-नाम और कृषि बाजार एप्लिकेशन जैसी सेवाएँ, किसानों को उनके कृषि उत्पादों का सही मूल्य जानने में मदद करती हैं और उन्हें अपनी फसलों को सही बाजार में बेचने की सुविधा देती हैं।

घ) कृषि संबंधित शिक्षा और प्रशिक्षणः ICT प्लेटफॉर्म किसानों को कृषि में नई तकनीकों, उन्नत बीजों, जैविक खेती, सिंचाई पद्धतियों और कीट नियंत्रण के बारे में शिक्षा प्रदान करते हैं। सरकार और विभिन्न संस्थान डिजिटल माध्यम से किसानों को प्रशिक्षण देने के लिए ऑनलाइन कोर्स, वेबिनार, और वीडियो ट्यूटोरियल्स उपलब्ध कराते हैं। इससे किसान अपनी कृषि पद्धतियों को सुधार सकते हैं और बेहतर उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

ई-गवर्नेंस और ICT द्वारा दी जाने वाली प्रमुख सेवाएँ

क) डिजिटल खेत योजनाः सरकार ने डिजिटल खेत योजना के तहत किसानों को स्मार्ट फोन, इंटरनेट और कंप्यूटर के माध्यम से कृषि सम्बंधी जानकारी देने की शुरुआत की है। इस योजना के तहत किसानों को फसल पैटर्न, उर्वरक, कीट नियंत्रण और कृषि में नई तकनीकों के बारे में जानकारी मिलती है।

ख) कृषि ऋण और सब्सिडी वितरणः ICT का उपयोग किसानों को कृषि ऋण और सब्सिडी प्राप्त करने की प्रक्रिया को आसान बनाने में किया जा रहा है। किसानों को अब बैंकों और वित्तीय संस्थानों के दफ्तरों के चक्कर नहीं काटने पड़ते। वे डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से आसानी से ऋण आवेदन कर सकते हैं और अपने खाते में राशि प्राप्त कर सकते हैं।

ग) फसलबीमा योजनाः प्रधानमंत्री फसलबीमा योजना के तहत ICT का उपयोग करके किसानों को उनके खेतों की फसल का बीमा कराया जाता है। इससे किसानों को प्राकृतिक आपदाओं, जैसे बाढ़, सूखा, या अन्य विपत्तियों से होने वाले नुकसान से बचाव मिलता है।

घ) ई-मार्केटिंग और ऑनलाइन कृषि प्लेटफॉर्म्सः ICT के माध्यम से किसान अपनी फसलें सीधे ऑनलाइन बाजारों में बेच सकते हैं। ई-नाम (National Agricultural Market) जैसे प्लेटफॉर्म्स ने किसानों को अपने उत्पादों को देशभर में कहीं भी बेचने का अवसर दिया है, जिससे उन्हें उचित मूल्य मिलता है।

चुनौतियाँ और समाधान

हालाँकि, ICT और ई-गवर्नेंस के लाभ कई हैं, लेकिन इसके कार्यान्वयन में कुछ चुनौतियाँ भी हैं। सबसे बड़ी चुनौती डिजिटल साक्षरता की कमी है। भारतीय किसानों का एक बड़ा हिस्सा तकनीकी रूप से साक्षर नहीं है, जिसके कारण उन्हें इन सेवाओं का पूरा लाभ नहीं मिल पाता। इसके समाधान के लिए, सरकार को किसानों के लिए डिजिटल शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विस्तार करना चाहिए। इसके अलावा, इंटरनेट की पहुँच भी एक बड़ी समस्या है, खास कर ग्रामीण क्षेत्रों में। इंटरनेट-कनेक्टिविटी में सुधार करने के लिए, सरकार को बुनियादी ढाँचे का विस्तार और ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट-कनेक्टिविटी को बढ़ावा देना होगा।

निष्कर्ष

कृषि में ई-गवर्नेंस और ICT के उपयोग से किसानों को सरकारी योजनाओं, सेवाओं और सुविधाओं तक आसान पहुँच मिल रही है। यह न केवल उन्हें सशक्त बना रहा है बल्कि उनकी जीवन शैली में सुधार कर रहा है। हालांकि, इसके कार्यान्वयन में कुछ चुनौतियाँ भी हैं लेकिन सही प्रयासों और संसाधनों के साथ, इन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। कुल मिलाकर, ICT और ई-गवर्नेंस कृषि क्षेत्र को एक नई दिशा दे रहे हैं, जिससे भारतीय किसान समृद्धि की ओर बढ़ रहे हैं।

संदर्भ

- https://www.ibef.org/blogs/digital-india-advancements-in-e-governance-services
- https://www.investindia.gov.in/team-india-blogs/digital-india-revolutionising-tech-landscape

❖❖

ISSN No. 2583-3316

फल एवं सब्जियों की परिरक्षण की सामान्य विधियाँ

अरुण प्रकाश* एवं विनय प्रकाश

कृषि विज्ञान विभाग, डॉल्फिन (पीजी) बायोमेडिकल और प्राकृतिक विज्ञान संस्थान, देहरादून, उत्तराखंड

पत्राचारकर्ता: apkohli101@gmail.com

परिचय

फल एवं सब्जियाँ पोषक तत्वों से भरपूर होती है, जिसमें कि विटामिन, खनिज व प्रोटीन अमीनो अम्ल, फाइबर और एंटीऑक्सीडेंट जैसे पोषक तत्व होते हैं, जो हमारे शरीर को कई तरह से फायदा पहुँचाती हैं और हमारे शरीर के प्रतिरक्षा प्रणाली को भी मजबूत करती है। जब हम फल एवं सब्जियाँ खाते हैं, तो उससे हमारे शरीर को ढेर सारे जरुरी खनिज और पोषक तत्व मिल जाते हैं। लेकिन फल एव सब्जियाँ बहुत नाशवान प्रकृति की होती है, जो बहुत जल्दी खराब हो जाती है, जिसमें जितना नमी की मात्रा होती वह उतना जल्दी खराब होने लगता है, अगर फल सब्जियों को लम्बे समय तक सुरक्षित रखना है तो हमें कुछ विधियों को अपनाना चाहिए, जिससे कि हमें उपयुक्त समय व बेमौसम भी फल एवं सब्जियाँ मिल पायें इसलिए हम इनको परिरक्षित करते हैं।

फल एवं सब्जियों को सुरक्षित रखने की विधियाँ

फल एवं सब्जियों को बेमौसम प्रयोग करने के लिए सुरक्षित रखने हेतु आमतौर से दो प्रकार की सामान्य विधियाँ काम में लायी जाती हैं

- **अस्थायी परिरक्षणः** इस विधि में फल एवं सब्जियाँ अल्पकाल तक के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है यह विधि परिरक्षित करने की अस्थायी परिरक्षण विधि है।
- **स्थायी परिरक्षणः** इस विधि में फल एवं सब्जियाँ अधिक समय तक के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है यह विधि परिरक्षित करने की स्थायी परिरक्षण विधि हैं।

अ) अस्थायी परिरक्षण

अस्थायी परिरक्षण अर्थात् अल्प अवधि तक सुरक्षित रखने की विधियों में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक होता है

क) फल एवं सब्जियों को तोड़ने तथा परिवहन आदि में सावधानी

फल एवं सब्जियों तोड़ने तथा परिवहन आदि में विशेष सावधानी रखी जाए, तो इन्हें परिरक्षण में सहायता मिलती है। तोड़ते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इन पर खरोंच या चोट न लगे, क्योंकि चोट खाए हुए फलों पर जीवाणुओं का असर जल्दी होने लगता है। जहाँ तक संभव हो, इन्हें सुबह या शाम के समय तोड़ना चाहिए। तोड़ने के बाद इन्हें टोकरियों अथवा बक्सों में इस तरह बन्द करना चाहिए कि वे पिचक अथवा दब न जायें। चोट खाए हुए अथवा दागी फल एवं सब्जियों को स्वस्थ फलों के साथ नहीं रखना चाहिए। इनके

परिवहन में इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि वे दब न जायें।

ख) कम तापमान

फल और सब्जियाँ ऊँचे तापमान में जल्दी खराब होने लगती हैं, क्योंकि जीवाणुओं की क्रिया तेज हो जाती है। तापमान कम होने पर जीवाणु निष्क्रिय हो जाते हैं इसलिए रेफ्रिजरेटर में फल तथा सब्जियों को कुछ दिनों तक खाने योग्य अवस्था में रखा जा सकता है। आजकल व्यापारिक स्तर पर अनेक फल तथा सब्जियों को शीत-भंडारों में महीनों तक खाने योग्य अवस्था में रखा जाता है। तापमान प्रत्येक फल या सब्जी के लिए भिन्न-भिन्न होता है।

ग) हल्के जीवाणु-नाशक पदार्थों का प्रयोग

शक्कर, नमक, सिरका, मसाले, सोडियम बेंजोएट आदि का प्रयोग जब कम मात्रा में करते हैं तो खाद्य पदार्थों को अल्पकाल के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है, क्योंकि कीटाणुओं पर इनका अस्थायी प्रभाव होता है। यही कारण है कि टमाटर के केचप की बोतल खोल लेने के बाद भी कई सप्ताह तक खराब नहीं होती है।

घ) नमी तथा हवा से दूर रखना

नमी में जीवाणु तेजी से बढ़ते हैं। नमी की अधिकता से खाद्य पदार्थों में रासायनिक परिवर्तन तेजी से होने लगते हैं। इसी तरह हवा भी जीवाणुओं के पनपने के लिए अनुकूल रहती है। अतः फल-सब्जियों को शुष्क वातावरण में रखने से उनके टिकाऊपन को बढ़ाया जा सकता है। अचार या सूखे हुए फल तथा सब्जियों को वायुरोधी डिब्बों में रखकर अधिक समय तक परिरक्षित रखा जा सकता है। यदि तेल तथा घी को कुछ दिनों तक खुला रखा जाए तो उनमें एक अप्रिय गंध उत्पन्न हो जाती है, जिसे विकृतगंधिता (रेन्सिडिटी) कहते हैं।

ङ) पाश्चुरीकरण

यह वह विधि है जिसमें ताप द्वारा खाद्य पदार्थों के अधिकांश (किन्तु सब नहीं) जीवाणुओं को नष्ट कर दिया जाता है। यह विधि तरल पदार्थों के परिरक्षण में काम आती है। इस विधि से खटासरहित खाद्य पदार्थों का परिरक्षण अस्थायी तौर पर, लेकिन खटासयुक्त (फलों के रस) पदार्थों का स्थायी परिरक्षण किया जाता है।

ब) स्थायी परिरक्षण

अधिक दिनों तक फल एवं सब्जियों को सुरक्षित रखने (स्थायी परिरक्षण) के लिए यह आवश्यक है कि इनमें उपस्थित जीवाणु नष्ट या निष्क्रिय हो जाये। इस तरह ये एक-दो वर्ष या इससे भी अधिक समय तक खाने योग्य अवस्था में बने रहते हैं। इस विधि से सुरक्षित खाद्य पदार्थों में भी कुछ रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं, लेकिन ये परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे होते हैं।

स्थायी परिरक्षण की विधियाँ

फल एवं सब्जियाँ को अधिक समय तक सुरक्षित रखने के लिए स्थायी परिरक्षण निम्नलिखित विधियों द्वारा किया जाता है

क) निर्जर्मीकरण (स्टरलाइजेशन) द्वाराः किसी भी खाद्य पदार्थ के समस्त जीवाणुओं को नष्ट कर देने की क्रिया को निर्जर्मीकरण कहते हैं। इसके लिए खाद्य पदार्थों को इतना ही गरम किया जाता है, जिससे उनके विटामिन, रंग एवं स्वाद आदि नष्ट हो जाते हैं और उनमें उपस्थित जीवाणु निष्क्रिय हो जाये। इस विधि को संसाधन (प्रोसेसिंग) कहते हैं। डिब्बाबन्द फल एवं सब्जियों को इसी सिद्धान्त के द्वारा सुरक्षित किया जाता है। फलों को पानी के उबलने के तापमान पर संसाधित किया जाता है, क्योंकि ये खटासयुक्त होते हैं। इसके जीवाणु पानी के उबलने के तापमान (100° से.) पर निष्क्रिय हो जाते हैं, लेकिन टमाटर तथा रूबर्ब को छोड़कर सभी सब्जियां खटासरहित होती हैं। खटासरहित पदार्थों के जीवाणु अधिक गरमी सहन कर लेते हैं, इसलिए सब्जियों को प्रेशर कुकर में 10 पौंड दाब पर संसाधित किया जाता है। 10 पौंड दाब पर तापमान 116° से. हो जाता है।

विभिन्न सब्जियों तथा फलों के संसाधन का समय उनकी संरचना के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। डिब्बे के आकार पर भी संसाधित करने का समय अलग-अलग होता है। उदाहरण के लिए, बड़े आकार के डिब्बे के संसाधन में अधिक समय तथा छोटे आकार के डिब्बे के लिए कम समय की आवश्यकता पड़ती है। इसकी विस्तृत चर्चा आगे की गई है।

ख) चीनी द्वाराः खाद्य पदार्थों को चीनी द्वारा सुरक्षित करने की विधि बहुत पुरानी है। यदि किसी पदार्थ में चीनी की मात्रा 66 प्रतिशत से अधिक हो जाती है, तो वह पदार्थ स्थायी रूप से सुरक्षित हो जाता है। चीनी जीवाणुओं के लिए विष का कार्य नहीं करती बल्कि उसके गाढ़े घोल में जीवाणु परासरण की क्रिया होने से निष्क्रिय या नष्ट हो जाते हैं। जैम, जेली, मार्मलेड, मुरब्बा, कैंडी, सिरप आदि पदार्थ इसी सिद्धान्त के आधार पर सुरक्षित रहते हैं।

ग) नमक द्वाराः नमक जीवाणुओं के लिए परासरण द्वारा काम करने के साथ-साथ उनके लिए विष का भी काम करता है। साथ ही, नमक की अधिकता से जीवाणुओं की कोशिकाओं

का विदारण भी हो जाता है। 15 प्रतिशत या इससे अधिक नमक द्वारा फल-सब्जियों का स्थायी परिरक्षण हो जाता है। अचार इसी सिद्धान्त पर सुरक्षित रहते हैं, क्योंकि जिस फल या सब्जी में नमक मिलाया जाता है, उसे यह आंशिक रूप से निर्जलीकृत कर देता है। यह फल-सब्जियों की नमी सोख लेता है तथा नमी के अभाव में सूक्ष्मजीव वृद्धि नहीं कर पाते हैं। यह ऑक्सीजन की घुलनशीलता को भी कम कर देता है, जिससे जीवाणुओं को वृद्धि के लिए पर्याप्त ऑक्सीजन नहीं मिल पाता है।

घ) रसायनों द्वाराः रसायनों के सीमित प्रयोग से कुछ खाद्य पदार्थों का स्थायी परिरक्षण हो जाता है। इन रासायनिक पदार्थों का उपयोग करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि इन्हें सही मात्रा में ही डाला जाये। भारतीय फल पदार्थ आदेश के अनुसार हमारे देश में निम्नलिखित रासायनिक पदार्थों का प्रयोग किया जाता है

- पोटैशियम मेटाबाइसल्फाइट या सोडियम मेटाबाइसल्फाइट
- सोडियम बेंजोएट

• **पोटैशियम मेटाबाइसल्फाइटः** इसको पानी में घोलने पर सल्फर डाइ-ऑक्साइड गैस निकलती है, जिसकी उपस्थिति में जीवाणु नहीं पनप पाते।

• **सोडियम बेंजोएटः** इसे पानी में घोलने से बेंजोइक अम्ल प्राप्त होता है, जिसकी उपस्थिति में जीवाणु नहीं पनप पाते। उपर्युक्त दोनों रासायनिक पदार्थ केवल खटासयुक्त खाद्य पदार्थों के परिरक्षण में ही प्रभावशाली होते हैं। इन्हें पानी में अच्छी तरह घोलकर मिलाना चाहिए।

ङ) खमीर उठाना (किण्वन)ः खमीर उठाना उस क्रिया को कहते हैं जिसमें जीवाणुओं तथा एंजाइमों की क्रिया से खाद्य पदार्थों का कार्बोहाइड्रेट अंश नष्ट हो जाता है। इस क्रिया से निर्मित पदार्थों से भी खाद्य पदार्थों का स्थायी संरक्षण हो जाता है। किण्वन तीन तरह का होता हैः

- ऐल्कोहॉलीय किण्वन
- ऐसीटिक किण्वन
- लैक्टिक किण्वन

• **ऐल्कोहॉलीय किण्वनः** यह वह क्रिया है, जिसमें खमीर (यीस्ट) की कार्बोहाइड्रेट पर क्रिया से ऐल्कोहॉल तथा कार्बन डाइ-ऑक्साइड गैस बनती है। ऐल्कोहॉल की अधिक मात्रा में जीवाणुओं की वृद्धि रुक जाती है। 18 प्रतिशत ऐल्कोहॉल होने पर सारे जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। शराब इसी सिद्धान्त पर सुरक्षित रहती है।

• **ऐसीटिक किण्वनः** ऐसीटिक अम्ल जीवाणु की क्रिया द्वारा ऐल्कोहॉल से ऐसीटिक अम्ल तैयार होता है, जो जीवाणुनाशी होता है। दो प्रतिशत ऐसीटिक अम्ल में अधिकांश खाद्य पदार्थ स्थायी रूप से सुरक्षित रह जाते हैं। इसका प्रयोग केचप, अचार तथा चटनी बनाने में किया जाता है। फलों के रस का खमीर उठाकर सिरका बनाया जाता है। इसमें ऐसीटिक अम्ल की मात्रा 4-5 प्रतिशत होती है।

• **लैक्टिक किण्वनः** इस क्रिया में खाद्य पदार्थों के कार्बोहाइड्रेट लैक्टिक अम्ल जीवाणुओं की क्रिया से लैक्टिक अम्ल में बदल जाते हैं। दही लैक्टिक अम्ल जीवाणुओं की क्रिया से ही जमता है। जीवाणु अम्ल की उपस्थिति वाले खाद्य पदार्थों में नहीं बढ़ता है, लेकिन नमक का 8-10 प्रतिशत घोल प्राकृतिक लैक्टिक अम्ल जीवाणुओं की वृद्धि में सहायक होता है। यह तेजी से कार्बोहाइड्रेट को लैक्टिक अम्ल में परिवर्तित कर देता है। इसलिए कई अचार इससे सुरक्षित रहते हैं तथा लैक्टिक अम्ल से अचार में एक विशेष स्वाद आ जाता है।

च) शुष्कन (डिहाइड्रेशन)ः जीवाणुओं के पनपने के लिए पानी की आवश्यकता होती है। यदि पानी न मिले तो उनका जीवित रहना मुश्किल हो जाता है। खाद्य पदार्थों को धूप या मशीन द्वारा सुखा देने से इनमें उपस्थित पानी उड़ जाता है, सुखाने के बाद इनको वायु रोधी काँच या प्लास्टिक के डिब्बों या प्लास्टिक की थैलियों में रखना आवश्यक होता है, वरना वे वायुमंडल से नमी सोख लेते है व फफूँदी लग जाती है।

निष्कर्ष

फल सब्जियों को लंबे समय तक व बेमौसम प्रयोग करने के लिए यदि उपरोक्त लेख में बताए विधियों का प्रयोग किया जाए तो हम 90-96 प्रतिशत तक फल सब्जियों को परिरक्षित कर सकते हैं तथा बेमौसम भी मौसमी फलों एवं सब्जियों के पोषक तत्व हमारे शरीर को मिल सकता है व व्यावसायिक तौर पर भी इन विधियों का प्रयोग करके यह हमारे देश के युवाओं का बेहतर आजीविका का साधन बन सकता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

जैविक खेती वर्तमान की आवश्यकता

गौरव शुक्ला[1]*, पूजा कनौजिया[2] खलील खाँन[3] एवं राजेश राय[4]

[1]मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन, [3]मृदा विज्ञान विभाग एवं [4]प्रसार वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केंद्र, दलीप नगर, कानपुर देहात
[2]खाद एवं पोषण विज्ञान चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कानपुर

पत्राचारकर्ता: shuklagaurav48455@gmail.com

परिचय

विश्व में जैविक खेती भारत की ही देन है। जैविक खेती का इतिहास देखा जाये तो भारत तथा चीन इसके मूल में होंगे। इन दोनों देशों की कृषि परंपरा 4,000 वर्ष पुरानी है तथा यहाँ के किसान चार शताब्दी के कृषि ज्ञान से परिपूर्ण किसान हैं और जैविक खेती ही उन्हें इतने वर्षों तक पालती पोसती रही है। जैविक खेती चूँकि अधिक बाह्य उत्पादन उपयोग पर आश्रित नहीं है और इसके पोषण के लिए जल की अनावश्यक मात्रा भी वांछित नहीं है इस कारण यह प्रकृति के सबसे नजदीक है और प्रकृति ही इसका आदर्श है। पूरी विद्या प्राकृतिक प्रक्रियाओं के सांमजस्य एवं उनके एक-दूसरे पर प्रभाव की जानकारी पर आधारित होने के कारण इससे न तो मृदा जनित तत्वों का दोहन होता है।

जैविक खेती की आवश्यकता

- रसायन एवं कीटनाशक आधारित खेती टिकाऊ नहीं होती है। पहले से अधिक पैदावार लेने के लिए आधुनिक खेती में लगातार ज्यादा से ज्यादा रासायनिक खाद और कीटनाशकों का प्रयोग करना पड़ रहा है।
- रासायनिक खेती से किसान का खर्चा और कर्जा बढ़ रहा है इसके बावजूद इससे आमदनी का कोई भरोसा नहीं है।
- रासायनिक खेती के द्वारा उत्पन्न खाद्यानो के ग्रहण करने से मनुष्य स्वस्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है यहाँ तक की माँ के दूध में भी कीटनाशकों के अवशेष पाये गये हैं, इसके कारण हमारा स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। मनुष्य और पशुओं में बाँझपन बढ़ रहा है, बढ़ती बीमारियाँ, खास तौर पर कैंसर इत्यादि में, हमारे खान-पान की महत्वपूर्ण भूमिका को वैज्ञानिक और आमजन सब मानते हैं। (हालाँकि इन बीमारियों के होने में अकेले खान-पान की ही भूमिका नहीं है, खराब होते स्वास्थ्य में हमारी जीवनशैली का भी बहुत बड़ा योगदान है।) कई पक्षी और जीव-जन्तु समाप्त हो रहे हैं, यानी जीवन नष्ट हो रहा है। स्मरण कीजिए कि भोपाल गैस कांड जिस फैक्ट्री में हुआ था, उसमें कीटनाशक ही बनते थे।
- रासायनिक खादों का निर्माण पेट्रोलियम पदार्थों पर आधारित है और वह आने वाले समय में समाप्त होने वाले हैं। इसलिए आज नहीं तो कल, हमें रासायनिक उर्वरकों के बिना खेती करनी ही पड़ेगी।

एक और बात पायी गई है, जैविक खेती अपनाने में अग्रणी भूमिका निभाने वाले बहुत से किसान ऐसे हैं, जिन्होनें पहले रासायनिक खेती भी जोर-शोर से अपनाई थी, अनेक पुरूस्कार प्राप्त किये परन्तु जब कुछ समय बाद इससे बहुत नुकसान होने लगे तब उन्होने नये रास्ते तलाशने शुरू किये और अंतः जैविक खेती तथा कृषि की पुरानी पद्धति की तरफ आकृष्ट हुए, इससे रासायनिक खेती की विनाशकारी सीमाएँ स्पष्ट होती नजर आई।

जैविक खेती की विशेषताये

जैविक खेती अपनाने से निम्न विशेषताये हैं

- इससे न केवल भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है बल्कि फसल का उपज एवं उसकी गुणवत्ता में भी वृद्धि होती है।
- इस पद्धति से पर्यावरण प्रदूषण रहित होता है।
- इसमें कम पानी की आवश्यकता होती है अतः जैविक खेती

पानी का संरक्षण करती है।

• जैविक खेती से भूमि की गुणवत्ता बनी रहती है और उसमें सुधार होता रहता है।

• यह किसान के पशुधन के लिए भी बहुत महत्व रखती है और अन्य सूक्ष्म जीवों के लिए भी सुधार होता है।

• फसल अवशेषों को जलाने करने की आवश्यकता नहीं होती है।

• उत्तम गुणवत्ता का फसल उत्पाद प्राप्त होता है।

• जैविक खेती से उत्पन्न किये गये खाद्यान्न बाजार में महंगे मूल्य पर बिकते हैं।

• कृषि के सहायक जीव न केवल सुरक्षित होंगे, बल्कि उनमें बढ़ोत्तरी भी होगी।

• इसमें कम लागत आती है और लाभ ज्यादा होता है।

• जैविक खेती से लाभकारी सूक्ष्म जीवों की वृद्धि होती है।

जैविक खेती से होने वाले लाभ

कृषकों की दृष्टि से लाभ

• भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि हो जाती है।

• सिंचाई अंतराल में वृद्धि होती हैं, जिससे सिंचाई पानी की बचत होती है।

• रासायनिक खाद पर निर्भरता कम होने से लागत में कमी आती है।

• फसलों की उत्पादकता में वृद्धि हो जाती है।

• बाजार में जैविक उत्पादों की माँग बढ़ने से किसान की आय में भी वृद्धि होती है।

मृदा की दृष्टि से लाभ

• जैविक खाद के उपयोग करने से भूमि की गुणवत्ता में सुधार आता हैं।

• भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ती है।

• भूमि से पानी का वाष्पीकरण कम होता है।

पर्यावरण की दृष्टि से लाभ

• भूमि के जल स्तर में वृद्धि होती है।

• मिट्टी, खाद्य पदार्थ और मृदा में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी आती है।

• कचरे का उपयोग खाद बनाने के लिए किया जाता है, जिससे बीमारियों में कमी आती है।

• फसल उत्पादन की लागत में कमी एवं आय में वृद्धि हो जाती है।

जैविक खेती के सिद्धांत

जैविक खेती के निम्नलिखित सिद्धांत हैं

• जैविक खेती को पूर्णरूप से अपनाना संभव है तथा उसकी तत्कालिक संदर्भ में आवश्यकता निर्विवाद है।

• जैविक खेती कृषि उत्पादन की वह कार्यमाला है, जिसमें कई उपायों/विधियों के मध्य समन्वय स्थापित किया जाता है।

• जैविक खेती को सभी कृषक बड़ी आसानी एवं सरलता से अपना सकते हैं

• जैविक खेती की दी गई विधि/विधियों का अपनी सुविधानुसार कहीं से भी अनुसरण आरम्भ कर सकते हैं।

• उपाय छोटे अवश्य प्रतीत होते हैं पर उनकी सम्मिलित शक्ति विशाल है।

• आज ही जैविक खेती पद्धति अपनाने की शुरूआत करें, जो सदा निभने वाली कम लागत खर्च के साथ पर्यावरण मित्र भी है।

जैविक खेती के उद्देश्य

जैविक खेती अपनाने के कई उद्देश्य हैं, जिनका विवरण निम्नवत है

• जैविक विविधता को समृद्ध करना एवं पर्यावरण संरक्षण करना।

• मृदा एवं जल का संरक्षण कर कृषि उत्पादन में वृद्धि करना।

• रसायन मुक्त पानी, मिट्टी, हवा और भोजन उपलब्ध कराना।

• जैव विविधता के आधार पर पारिस्थितिकी, कृषि को बढ़ावा देने, जैविक कृषि निवेश एवं कृषि उपज में गुणवत्ता नियन्त्रण सुनिश्चित करना।

• मानव स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए सुरक्षित कृषि उत्पादों का उत्पादन करना।

• सुरक्षित कृषि से पारम्परिक ज्ञान का विकास करना।

• जैविक खेती को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना।

• नियन्त्रित जैविक उत्पादों के लिए घरेलू बाजार सुनिश्चित करना।

• जैविक खेती के सम्बन्ध में जागरूकता और प्रशिक्षण कार्यक्रम, मार्केट लिन्केज (संयोजन) विकास एवं जैविक उत्पादों को चिन्हित करना (ब्रैन्डिंग)।

• पर्यावरण सन्तुलन के साथ कम लागत वाली कृषि उत्पादन तकनीकी अपनाकर खेती करना।

• रसायन एवं कीटाणुनाशक मुक्त कृषि उत्पादों का उत्पादन करना।

कृषि को लाभकारी बनाकर कृषकों के आर्थिक स्तर में सुधार लाना।

• कृषि उत्पादन को स्थायित्व प्रदान करते हुए पर्यावरण संरक्षण एवं पर्यावरण संतुलन बनाये रखते हुए कृषि को लाभकारी बनाना।

जैविक खेती के घटक

(क) फसल और मृदा प्रबंधन

इस प्रणाली का उद्देश्य मिट्टी के उपजाऊपन को दीर्घकालीन आधार पर बनाए रखने के लिये उसमें जैविक पदार्थों के स्तर में

वृद्धि करना है। इस घटक के तहत फसल की विभिन्न किस्मों में से चयन, समय पर बुवाई करने, फसलों की अदला-बदली करके बुवाई करने हरी खाद के उपयोग और लेग्यूम जैसी फसलों को साथ बोने पर जोर दिया जाता है।

(ख) पोषक तत्वों का प्रबन्धन

इसमें जैविक पदार्थों जैसे पशुओं के गोबर की खाद के उपयोग, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, फसल अपशिष्ट के उपयोग, हरी खाद और जमीन की उत्पादकता बढ़ाने के लिये आच्छादित फसलों को उगाया जाता है। पोषक तत्वों के पुर्नचक्रण के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए फसलों की अदला-बदली करके बुवाई और जैव उर्वरकों को भी शामिल किया जाता है।

(ग) पादप संरक्षण

कीड़े-मकोड़ों, बीमारी फैलाने वाले परजीवी और अन्य महामारियों को नियंत्रित करने के लिये मुख्य रूप से फसलों की अदला-बदली करके बुवाई, प्राकृतिक कीट नियंत्रकों, स्थानीय किस्मों, विविधता और जमीन की जोत का सहारा लिया जाता है। इसके बाद वानस्पतिक, तापीय और रासायनिक विकल्पों का इस्तेमाल सीमित स्थितियों में अन्तिम उपाय के तौर पर किया जाता है।

(घ) पशुधन प्रबन्धन

मवेशियों को पालने के लिये उनके उद्विकास सम्बन्धी अनुकूलन, व्यवहार सम्बन्धी आवश्यकताओं और उनके कल्याण सम्बन्धी मुद्दों (जैसे पोषक अहार, आश्रय, प्रजनन आदि) पर पूरा ध्यान दिया जाता है।

(ङ) मृदा और जल-संरक्षण

वर्षा के फालतू पानी से जमीन का कटाव होता है। इसे कंटूर खेती, कंटूर बाँधों के निर्माण, सीढ़ीदार खेती, पानी के बहाव के मार्ग में घास उगाने जैसे उपायों से रोका जा सकता है। शुष्क क्षेत्रों में क्यारियों के बीच वर्षा के पानी को जमा करके, ब्राड बेड और फरो प्रणाली, जल कुण्ड, भूखण्डों के बीच वर्षा जलसंचय और स्कूपिंग जैसे उपाय अपनाकर पानी का संरक्षण किया जा सकता है।

जैविक खेती के झेत्र

- वर्षा आधारित क्षेत्र जहाँ पर सिंचाई की सुविधाओं की कमी हो।
- वह क्षेत्र जहाँ पर न्यून सिंचित क्षेत्र हो।
- वह क्षेत्र जिनकी उत्पादकता बहुत कम हो।
- वह क्षेत्र जहाँ पर रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग बहुत कम किया जा रहा हो।
- वह क्षेत्र जहाँ पर लघु एवं सीमांत कृषकों की संख्या अधिक हो।
- वह क्षेत्र जहाँ पर कृषक परम्परागत विधि से खेती करते हो।
- जैविक खेती अपनाकर कृषि को स्थायित्व प्रदान करके निम्न विधियों का प्रयोग करना चाहिए।

जैविक प्रबंधन

जैविक खेती प्रबन्धन के महत्वपूर्ण बिन्दु निम्नलिखित हैं:-

- मृदा की समृद्धशीलता
- तापक्रम प्रबन्धन
- वर्षा जल का संधारण
- सौर उर्जा का अधिकतम उपयोग
- आदानों में आत्मनिर्भरता
- प्राकृतिक चक्र एवं जीव स्वरूपों की सुरक्षा
- पशुओं का समन्वय तथा पशु शक्ति तथा स्थानीय स्रोतों पर आधिकारिक निर्भरता

जैव उर्वरक

- राइज़ोबियम
- एजोटोबैक्टर
- फॉस्फेट घोलक जीवाणु (पी.एस.बी. या पी.एस.एम.)

निष्कर्ष

कृषि की चुनौतियों से निपटने के लिये जैविक खाद का इस्तेमाल आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इस तरह की खेती के प्रारम्भिक चरणों में आर्थिक लाभ कम होने से किसान जैविक खेती के तौर-तरीके अपनाने से बचते हैं। लेकिन यह इस तरह की खेती के फायदों के बारे में किसानों की जानकारी की कमी दर्शाता है। सरकारी एजेंसियों और योजनाओं में इस कमी को दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसके लिये कृषक समुदाय को जैविक खेती की तकनीकों के बारे में मिसाल देकर जानकारी दी जानी चाहिए, जिससे वे पारम्परिक खेती के वैकल्पिक तरीकों के बारे में विशेषज्ञता हासिल कर सकें। जैविक प्रणाली में सभी घटकों के सही मात्रा में उपयोग करते हुए अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिये अच्छे प्रबन्धकीय कौशल की आवश्यकता होती है। इसलिए खेती के प्रबन्धकों यानी किसानों को संसाधनों का उचित मात्रा में लगातार उपयोग सुनिश्चित करने के लिये प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। भारत में जैविक खेती की अपार सम्भावनाएँ हैं, इसलिये खेती की जैविक विधियों के प्रमाणन के लिये और अधिक अनुसन्धान की आवश्यकता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

सब्जी बीजों का भण्डारण

सुधीर दास[1]*, प्रमिला[2], बरुन[3], आनंद प्रसाद राकेश[4], संतोष कुमार सिंह[5] एवं टी. पी. महतो[6]
[1,2एवं3]उद्यान विज्ञान विभाग, [4एवं5]मृदा विज्ञान विभाग, [6]कीट विज्ञान विभाग
पंडित दीनदयाल उपाध्याय उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, पिपराकोठी, पूर्वी चम्पारण
पत्राचारकर्ता: sudhir.das@rpcau.ac.in

परिचय

किसी भी फसल के बीज की गुणवत्ता निर्धारण के मुख्य कारक उसका आनुवांशिक एवं भौतिक शुद्धता, अंकुरण क्षमता नमी, उसका स्वास्थ्य और उनकी ओज है। बीज की गुणवत्ता बीज बनने, बढ़ने, पकने, फसल की कटाई एवं बुवाई के समय में प्रभावित होती है। बीज की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए इसे सुखाने, साफ करने, ग्रेडिंग, पैकेजिंग एवं भण्डारण के समय विशेष ध्यान देने की जरूरत होती है। प्रत्येक वर्ष बीजों की बहुत बड़ी मात्रा भण्डारण के दौरान खराब हो जाती है। ध्यान रखें कि भण्डारणगृह की नमी हमेशा नियंत्रित रहे अन्यथा बीज की गुणवत्ता को लम्बी अवधि तक बनाये रखना मुश्किल होता है। बीजों के भंडारण को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों तथा उनका उचित भण्डारण कैसे करें, इस विषय पर संक्षिप्त में जानकारी इस आलेख में दी गई है।

बीज की गुणवत्ता पर फसल कटाई का प्रभाव

बीज भण्डारण के लिए फल की कटाई उचित समय पर करना बहुत आवश्यक है क्योंकि अपरिपक्व अवस्था में कटाई करने से भंडार में बीज शीघ्र ख़राब हो जाते है। फसल कटाई के समय मौसम का विशेष ध्यान रखना चाहिए। इसके लिए कटाई हमेशा गर्म तथा सूखे मौसम में करनी चाहिए। कटाई के समय वायुमंडल में अधिक आर्द्रता होने से कुछ बीज जैसे मटर, लोबिया तथा राजमा के बीजों की गुणवत्ता बहुत अधिक प्रभावित होती है, जिसके कारण बीज जमाव में कमी, क्षति तथा ओज में कमी हो जाती है।

बीज जनित क्षमता

सामान्यतः बीज के पूर्णतया स्वस्थ पौधे के रूप में अनुकूल परिस्थितियों में विकसित होने की क्षमता को बीज जीवन क्षमता कहते है। केवल बीज से जड़ का निकालना ही बीज जमाव क्षमता का कारण नहीं है। बीज जमाव न होने का कारण, बीज का आंशिक रूप से मृत या क्षतिग्रस्त ही नहीं बल्कि पूर्ण रूप से मृत बीज या बीमारी से ग्रसित होना भी है।

बीज जमाव कम होने के कारण

बीज में भण्डारण के समय अधिक नमी की मात्रा तथा उच्च तापमान बीज की जमाव क्षमता को तेजी से कम करते है, इसलिए अधिक लम्बे समय तक बीज का भण्डार करने के लिए उसमें नमी तथा तापमान पर नियंत्रण रखना बहुत आवश्यक होता है। कम तापमान तथा कम नमी पर बीज भण्डार करने से बीज की आयु लम्बी हो जाती है। बीज की जीवन क्षमता पर बीज के भण्डारण के समय उसमें नमी की मात्रा का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। बीज भण्डारण में नमी तथा तापमान की महत्ता का अनुमान नीचे दिए गए नियमों से लगाया जा सकता है।

- नमी में एक प्रतिशत की गिरावट बीज की भण्डारण क्षमता

ISSN No. 2583-3316

को लगभग दुगना कर देती है।

• तापमान में 10° फारेनहाइट की गिरावट बीज की भण्डारण क्षमता को लगभग दुगना कर देती है।

• बीज भण्डारण की अच्छी अवस्था तब होती है जब भण्डारण वातावरण में अपेक्षिक आर्द्रता तथा डिग्री फारेनहाइट में भण्डारण तापमान का योग एक सौ होता है।

बीज की जीवन क्षमता में कमी का कारण बीज के विकास में कमी, कटाई के समय हुई क्षति, गलत ढंग से प्रसंस्करण तथा भण्डारण है। बीज की जमाव क्षमता में कमी की गति बीज को भण्डारण में रखने से पहले की गुणवत्ता पर निर्भर है। यह गति कार्यिकी परिवर्तनों या बीज की आयु से सम्बन्धित होती है। कुछ बीज कम आयु वाले होते है, जो बहुत शीघ्र जीवन क्षमता खो देते हैं। जैसे की प्याज व राजमा आदि, इनकी बीज आयु केवल 1 वर्ष ही है। मध्यम जीवन क्षमता वाले बीजों का जीवन 2-3 वर्ष होता है। इन बीजों को कई साल तक कम तापमान तथा अपेक्षिक आद्रता पर रखकर भण्डारित किया जा सकता है। सब्जियों के अधिकतर बीज इसी श्रेणी में आते है। अधिक लम्बे समय तक जमाव क्षमता वालो श्रेणी में कदूवर्गीय सब्जियों जैसे लौकी, तोरई, तरबूज, खरबूजा, पेठा, खीरा, टिण्डा, करेला आदि के बीज आते हैं।

बीज भण्डार का बीज की जीवन क्षमता पर प्रभाव

ऐसी भण्डारण परिस्थिति जोकि बीज की जीवन क्षमता, श्वसन की गति तथा दूसरी जैविक क्रियाओं को कम करके बिना बीज भ्रूण के क्षति पहुँचायें, बचाकर रखती है, उसके लिए भण्डार का तापक्रम, आर्द्रता तथा बीज नमी का आपसी सम्बन्ध सबसे महत्वपूर्ण है। जब बीज को एक निश्चित तापमान पर लम्बे समय तक रखते है, तो बीज की जीवन क्षमता एक स्तर पर स्थिर रहती है। अधिक लम्बे समय तक भण्डार करने से बीज की जीवन क्षमता में कमी होती है। उदाहरण स्वरूप जब टमाटर, राजमा, मटर, तरबूज, खीरा तथा मक्का के बीजों को 18 डिग्री सेंटीग्रेट पर नियंत्रित अवस्था में रखा गया तो हो उनकी जीवन क्षमता के बढ़ने का प्रभाव पाया गया। सब्जी बीज भण्डार के लिए, बीज में कम नमी की मात्रा रखने से उसे लम्बे समय तक सुरक्षित रख सकते है। यदि तापमान को ध्यान में रखकर बीज की नमी 4 से 6 प्रतिशत तक नियंत्रित रखा जाये तो बीज को अधिक समय तक भण्डार में रखा जा सकता है, यदि तापमान को भी नियंत्रित किया जा सके। भण्डारण के दौरान बीज की जीवितता पर भण्डार की आपेक्षिक आर्द्रता का भी प्रभाव पड़ता है।

बीज में नमी की मात्रा भी भण्डार में आपेक्षिक आर्द्रता से प्रभावित होती है। यदि बीज को कम तापमान पर व अधिक आपेक्षिक आर्द्रता पर रखा जाये तो बीज की जीवन क्षमतां में तेजी से कमी होती है। बीज को अधिक नमी तथा अधिक तापमान पर रखने से उसका जमाव झमता कम हो जाता है। अधिकतर बीज 13 से 15 प्रतिशत नमी तथा 25 डिग्री सेन्टीग्रेट तापमान पर भंडारण किया जाये तो बीज 104 दिन तक में अनुपयुक्त हो जाते हैं। बीज के जमाव पर तापक्रम की अपेक्षा बीज नमी तथा अधिक आपेक्षिक आर्द्रता का अधिक हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

भण्डारण में बीज की हानि के कारण

बीज में अधिक नमी, कवक के कारण सड़न, भौतिक टूट-फूट रोग, कीट प्रभावित बीज, अधिक तापमान, अधिक आपेक्षिक आर्द्रता, खराब पैकिंग, फफूँद एवं खराब रख रखाव आदि के कारण से बीजो की गुणवत्ता कम हो जाती है, जिससे भंडारण में बीज को हानि पहुँचता है।

निष्कर्ष

सब्जी बीजों का सही भंडारण उनकी गुणवत्ता और सफल फसल उत्पादन के लिए आवश्यक है। फसल कटाई, बीज सफाई, क्रायोप्रिजर्वेशन, वैक्यूम सीलिंग और नियंत्रित वायुमंडलीय भंडारण जैसी आधुनिक तकनीकों ने बीजों की दीर्घकालिक भंडारण झमता को बढ़ाया है। तापमान, नमी और ऑक्सीजन को नियंत्रित करके, बीजों की गुणवत्ता को लम्बे समय तक संरक्षित किया जा सकता है। इन आधुनिक भंडारण तकनीकों को अपनाने से खाद्यय सुरक्षा, सतत् कृषि और पादप जैव विविधता का संरक्षण सुनिश्चित किया जा सकता है। सब्जी बीज भंडारण के लिए बीज में कम नमी की मात्रा रखने से उसे लम्बे समय तक सुरक्षित कर सकते है। बीज नमी 4-6 प्रतिषत तक नियंत्रित रखकर अधिक समय तक भंडारण में रखा जा सकता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका

कल्पना*, रोनक कूड़ी, अनिता चौधरी एवं सुरेंद्र कुमार मुंड
उद्यान विज्ञान विभाग, कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान
पत्राचारकर्ता: kbaserwal@gmail.com

परिचय

कृषि क्षेत्र, जो सदियों से पारंपरिक तकनीकों पर आधारित है, अब आधुनिक तकनीकी क्रांतियों का अनुभव कर रहा है। इनमें से एक प्रमुख क्रांति कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) की है, जिसने कृषि उत्पादन, संसाधन प्रबंधन और खाद्य सुरक्षा में व्यापक बदलाव लाए हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता का कृषि में उपयोग न केवल उत्पादन बढ़ाने में मदद कर रहा है बल्कि खेती को अधिक सटीक, कुशल और स्थायी बनाने, स्वस्थ फसल उगाने, कीटो को प्रबंधन करने, मिट्टी और बढ़ती परिस्थितियों की निगरानी करने, किसानो के लिए डेटा का विश्लेषण करने में भी योगदान दे रही है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता क्या है?

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) एक प्रकार की तकनीक है, जो कंप्यूटर और मशीनों को मानव मस्तिष्क की तरह सोचने, सीखने और निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है। इसका उद्देश्य मशीनों को आत्मनिर्भर बनाना है ताकि वे बिना मानव हस्तक्षेप के जटिल कार्यों को हल कर सकें।

कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का महत्व

क) सटीक खेती: सटीक खेती का उद्देश्य फसलों की देखभाल और प्रबंधन को अत्यधिक विशिष्ट बनाना है। AI का उपयोग सटीक खेती के लिए प्रमुख रूप से किया जा रहा है, जैसे कि ड्रोन द्वारा खेतों की निगरानी, मिट्टी की नमी, पोषक तत्वों की स्थिति और फसल स्वास्थ्य का विश्लेषण आदि। इससे किसान सही समय पर सही मात्रा में उर्वरक, पानी और कीटनाशक का उपयोग कर सकते हैं, जिससे संसाधनों की बचत होती है और उत्पादन में वृद्धि होती है।

ख) फसल निगरानी और भविष्यवाणी: AI आधारित उपकरणों का उपयोग खेतों में फसलों की वास्तविक समय की निगरानी के लिए किया जा रहा है। ये उपकरण विभिन्न सेंसरों के माध्यम से फसलों की वृद्धि, कीट आक्रमण और रोग की पहचान कर सकते हैं। इसके साथ ही, मौसम की जानकारी और फसल की वृद्धि के आधार पर AI किसान को यह भी बता सकता है कि किस समय कौन सी फसल उगाई जाए या फसल की कटाई कब की जानी चाहिए।

ग) कीट और रोग प्रबंधन: कृषि में कीट और बीमारियाँ सबसे बड़े खतरों में से एक हैं। AI-आधारित सिस्टम कीटों और रोगों की पहचान और निदान के लिए अत्यधिक उपयोगी हैं। इनका उपयोग करके किसान समय पर उपाय कर सकते हैं, जिससे फसल की क्षति को कम किया जा सकता है। तस्वीरों और सेंसरों के माध्यम से AI स्वचालित रूप से रोग के लक्षणों की पहचान कर सकता है और उचित सुझाव दे सकता है।

घ) स्वचालन: AI -आधारित रोबोटिक्स का उपयोग खेतों में विभिन्न कार्यों जैसे बुवाई, निराई, छँटाई और कटाई में किया जा रहा है। स्वचालित ट्रैक्टर और रोबोट किसानों को खेत के कामों में मदद कर रहे हैं, जिससे श्रम की आवश्यकता कम हो रही है और काम तेजी से पूरा हो रहा है। स्वचालन से उत्पादन की लागत भी कम हो रही है।

ङ) संसाधन प्रबंधन: AI का उपयोग पानी, उर्वरक और अन्य संसाधनों के प्रभावी प्रबंधन में भी किया जा रहा है। सेंसर और मशीन लर्निंग मॉडल का उपयोग कर खेतों में जल प्रबंधन

ISSN No. 2583-3316

ड्रोन का रिमोट नियंत्रण

कीटनाशक छिड़काव में उपयोगी ड्रोन

का बेहतर निर्णय लिया जा सकता है, जिससे जल संरक्षण को बढ़ावा मिलता है। साथ ही, उर्वरक और कीटनाशक का उपयोग AI द्वारा सटीक मात्रा में किया जाता है, जिससे लागत में कमी और पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित होता है।

च) उपज पूर्वानुमान और बाजार मूल्यांकनः AI तकनीकों का उपयोग फसल की उपज के पूर्वानुमान में भी किया जा रहा है। मौसम की जानकारी, मिट्टी की गुणवत्ता और फसल की वृद्धि दर को ध्यान में रखकर, AI भविष्य की उपज का पूर्वानुमान लगा सकता है। इसके साथ ही, AI का उपयोग बाजार मूल्य निर्धारण में भी किया जा रहा है, जिससे किसान अपनी फसलों को अधिकतम लाभ पर बेच सकते हैं।

छ) डेटा विश्लेषणः कृषि में AI का सबसे बड़ा लाभ डेटा विश्लेषण के रूप में देखा जा रहा है। खेतों से संबंधित विभिन्न प्रकार के डेटा जैसे कि मिट्टी की गुणवत्ता, मौसम, फसल स्वास्थ्य और बाजार के रुझानों का विश्लेषण करके AI किसानों को बेहतर निर्णय लेने में मदद करता है। इससे कृषि उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ जोखिमों को भी कम किया जा सकता है।

कृषि में AI के लाभ

क) उत्पादन में वृद्धिः AI तकनीक के माध्यम से सटीक

एआई चालित कृषि यंत्र

खेती और फसल प्रबंधन के कारण उत्पादन में वृद्धि होती है।

ख) संसाधनों की बचतः पानी, उर्वरक और कीटनाशक का सही उपयोग होने से लागत में कमी और पर्यावरण संरक्षण में वृद्धि होता है।

ग) समय की बचतः स्वचालन और रोबोटिक्स के कारण खेती के काम को तेजी से पूरा किया जा सकता हैं।

घ) फसल हानि में कमीः रोगों और कीटों का समय पर निदान करके फसल की हानि को कम किया जा सकता है।

ङ) मिट्टी और जल संरक्षणः AI-आधारित सिंचाई तकनीकें जल संरक्षण और मिट्टी की सेहत बनाए रखने में मदद करती हैं।

चुनौतियाँ

- **तकनीकी ज्ञान की कमीः** ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों को AI तकनीक की समझ और उपयोग में कठिनाई होती है।
- **उच्च लागतः** AI-आधारित उपकरणों और तकनीकों की लागत अधिक होती है, जिससे छोटे और मध्यम किसानों के लिए इनका उपयोग कठिन हो सकता है।
- **इंफ्रास्ट्रक्चर की कमीः** AI के व्यापक उपयोग के लिए एक मजबूत डिजिटल बुनियादी ढाँचे की आवश्यकता होती है, जो कई ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध नहीं होता है।

निष्कर्ष

कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है और इसके माध्यम से खेती को अधिक सटीक, कुशल और स्थायी बनाया जा सकता है। हालाँकि, इसके व्यापक उपयोग के लिए तकनीकी प्रशिक्षण, लागत में कमी और डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर का विस्तार जरूरी है। भविष्य में, AI के साथ कृषि का संगम न केवल किसानों की आय बढ़ाने में सहायक होगा बल्कि यह वैश्विक खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

राइजोबियम जैव उर्वरकः एक विश्लेषण

योगेश कुमार

मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

पत्राचारकर्ता: yogeshkumarlike@gmail.com

परिचय

राइजोबियम मिट्टी में पाए जाने वाले जीवाणु हैं जोकि लम्बे छड़ के आकार का होता है तथा दलहनी और तिलहनी फसलों की जड़ों में सहजीवी के रूप में रह कर वायुमंडलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण का काम करता हैं और पौधो को नाइट्रोजन की पूर्ति करता है। यह पौधों की जड़ों से जुड़ जाता है और गाँठें बनाता है। ये गाँठें वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करते हैं तथा इसे अमोनिया में परिवर्तित करते हैं, जिसका उपयोग पौधे अपनी वृद्धि और विकास के लिए कर सकते हैं। पौधों की जड़ों में जितनी अधिक गाँठे होगी उतनी ही नाइट्रोजन की पूर्ति पौधों होगी और पौधा उतना ही स्वस्थ होगा। लेगुमिनेसी परिवार के अधिकांश पौधों का इस जीवाणु के साथ मजबूत सहजीवी संबंध होता है। संबंध सरल है, पौधे अपनी जड़ों में राइजोबियम को आश्रय देता है, जो शर्करा और अन्य पोषक तत्व प्रदान करते है और राइजोबियम बदले में, वायुमंडलीय नाइट्रोजन को, अमोनिया में परिवर्तित करते हैं, नाइट्रोजन का एक रूप जिसे पौधे आसानी से अवशोषित कर सकते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि राइजोबियम के सहजीवी संबंध के कारण विभिन्न दलहनी पौधों द्वारा 40 से 250 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष स्थिरीकरण किया जाता है।

राइजोबियम जैव उर्वरक के लाभ

- वायुमंडल में प्रचुर मात्रा में नाइट्रोजन उपलब्ध है, जोकि पौधे के वृद्धि और विकास दोनों के लिए बहुत जरुरी है। इसके बाबजूद पौधे इसे सीधे अपने उपयोग के लिए ग्रहण नहीं कर सकते, राइजोबियम बैक्टीरिया वायुमंडलीय नाइट्रोजन को अमोनिया और नाइट्रेट्स में परिवर्तित करते हैं और इसे फसल के लिए उपलब्ध करवाते है।
- यह रासायनिक उर्वरकों के उपयोग को ही कम करता है, जिनसे कृषि लागत में भी कमी आती है। इससे विशेष रूप से नाइट्रोजन और फ़ॉस्फ़ोरस, लगभग 15 से 25 प्रतिशत हिस्से की आपूर्ति होती है।
- राइजोबियम मिट्टी में पोषक तत्वों की ही मात्रा को नहीं बढ़ाता है बल्कि मिट्टी की उर्वरता, कार्बनिक पदार्थ ह्यूमस की वृद्धि, तथा मृदा की भौतिक एवं रासायनिक स्थिति में भी सुधार करता है। अतिरिक्त अमोनिया मिट्टी को भविष्य के विकास के लिए अधिक उपजाऊ और सहायक बनाता है और एक स्वस्थ और संपन्न पारिस्थितिकी तंत्र बनाता है।
- राइजोबियम मूंगफली, सोयाबीन, लाल-चना, हरा-चना, काला चना, मसूर, लोबिया और बंगाल-चना जैसी फसलों की पैदावार बढ़ा सकता है। इनके प्रयोग से फसलों में 10 से 15 प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि होती है।
- दलहनी फसलों की जड़ों में विघमान जीवाणुओं द्वारा संचित नाइट्रोजन अगली फसल द्वारा ग्रहण की जाती है। इससे न सिर्फ उस फसल के उत्पादन में वृद्धि होती है, जिसमे इसका उपयोग किया गया हो बल्कि बाद की फसलों को भी लाभ होता है।
- राइजोबियम पौधों को सूखे जैसे अजैविक तनाव को सहन करने में मदद कर सकता है और तनाव के प्रति पौधों की सहनशीलता को बढाता है।
- राइजोबियम इंडोल एसिटिक एसिड जैसे विकास हार्मोन को स्त्रावित करता है, जो रूट नोड्यूल बनाने में मदद करता है। इससे जड़ों और टहनियों की संख्या और लंबाई में भी बढ़ोतरी होती है तथा फुटाव भी ज्यादा होता है।
- मिट्टी में लाभकारी सूक्ष्मजीवों के प्रसार और अस्तित्व में मदद करता है ।
- राइजोबियम रोगजनकों को रोक सकता है, जो पौधों की बीमारियों का कारण बनते हैं।
- राइजोबियम जीवाणु से हारमोन्स एवं विटामिन भी बनते हैं, जिससे पौधो की बढ़वार अच्छी होती है और जड़ों का विकास भी अच्छा होता है।

• ये जैव उर्वरक बंजर या दूषित भूमि को बहाल करने के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। इसमें नाइट्रोजन-फिक्सिंग क्षमताएँ हैं, जो मिट्टी की उर्वरता को पुनर्जीवित करती हैं और स्थायी वनस्पति विकास का मार्ग बनाती हैं।

• राइजोबियम जैविक खेती के लिए एक उत्कृष्ट प्राकृतिक जैव उर्वरक है। यह रासायनिक उर्वरकों के लिए एक प्राकृतिक और पर्यावरण के अनुकूल विकल्प की पेशकश करके संतुलित मिट्टी के पारिस्थितिक तंत्र को बढ़ावा देता है।

• राइजोबियम जैव-उर्वरकों के उपयोग से, रासायनिक नाइट्रोजन उर्वरक उत्पादन और अनुप्रयोग से होने वाले ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने में मदद करता है।

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, राइजोबियम वास्तव में मूंगफली, सोयाबीन, लाल-चना, हरा-चना, काला चना, मसूर, लोबिया और बंगाल-चना आदि के लिए बनाया गया है। इन फलियों को राइजोबियम से लाभ होता है और पैदावार, स्वस्थ पौधे और समृद्ध मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि होती है। राइज़ोबियम जैव उर्वरक की अलग अलग प्रजातियाँ हर किसी खास फ़सल के लिए होता है, यह प्रजातियाँ और उनके द्वारा नाइट्रोजन की उपलब्धता (किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) सारणी में दिखाई गयी है।

राइजोबियम कल्चर की प्रजातियाँ, उससे सम्बंधित फसल तथा उसके प्रयोग से नाइट्रोजन मात्रा की पूर्ति

प्रजाति	फसल	नाइट्रोजन मात्रा की पूर्ति (किलोग्राम प्रति हेक्टेयर)
राइजोबियम लैग्यूमिनोसेरम	चना, मटर, मसूर, मूंग, उड़द, अरहर	62 से 132
राइजोबियम जेपोनिकम	सोयाबीन	57 से 105
राइजोबियम फेसिओली	राजमा.लोबिया	57 से 105
राइजोबियम मेलिलोटी	मेथी	100 से 150
राइजोबियम ट्राइफोलियम	बरसीम, लूसर्न	100 से 200
राइजोबियम ल्यूपिनी	ल्यूपिन	70 से 80
राइजोबियम	चना	75 से 117

उपयोग की विधियाँ

राइजोबियम कल्चर बाजार में 200 ग्राम के पैकेटों (पाउडर) तथा एक लीटर की बोतल (तरल) दोनों प्रकार में उपलब्ध होता है। दोनों ही कल्चर जीवित अवस्था में रहते है तथा दोनों का प्रभाव फसलों पर अच्छा होता है। पाउडर कल्चर दो पैकेट और तरल रूप एक बोतल (एक लीटर) एक एकड़ के लिए पर्याप्त है फिर भी तरल जैव उर्वरक को कंपनी के दिशानिर्देश और मापदंड के अनुसार ही उपयोग करना चाहिए। राइजोबियम जैव उर्वरक का उपयोग मुख्यतः बीजोपचार और मृदा में जुताई के समय किया जाना चाहिए।

बीजोपचार

बीजउपचार को राइजोबियम प्रयोग की उपयुक्त विधि माना गया है। बीजों को एक साफ सतह पर एत्रित कर जीवाणु खाद के घोल को बीजों पर धीरे-धीरे डालें.और बीजों को हाथ से उलटते पलटते जायें जब तक कि सभी बीजों पर जीवाणु खाद की समान परत न बन जाये। इस क्रिया में ध्यान रखें कि बीजों पर लेप करते समय बीज के छिलके का नुकसान न होने पाये। जब कि पाउडर जीवाणु के बीजोपचार के लिए 3 पैकेट (600 ग्राम) राइजोबियम प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करे। उपचार के लिए 1 लीटर पानी में 60 ग्राम गुड़ डालकर गरम करके घोल बनायें और ठंडा होने पर इसमें तीन पैकेट राइजोबियम कल्चर मिलायें। घोल को धीरे- धीरे लकड़ी के डंडे से हिलाते रहे। इतना घोल 1 हेक्टेयर में बोए जाने वाले बीजों के उपचार के लिए पर्याप्त होता है। इस घोल को बीजों पर धीरे-धीरे इस तरह छिड़कना चाहिये कि घोल की परत सब बीजों पर समान रूप से चिपक जाए। इसके बाद इन बीजों को छायादार जगह पर सुखाए, ताकि थोड़ा चिपचिपापन कम हो जाय, फिर सीधे ही इसकी बुवाई कर देनी चाहिए।

मृदा में जुताई के दौरान उपयोग

इसके लिए पाउडर और तरल जीवाणु को सीधा ही गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद के साथ खेत में जुताई के समय मृदा में मिला दें। गोबर की खाद के साथ प्रयोग करने से इसकी उपयोग क्षमता बढ़ जाती है। इसके साथ ही फसल के उत्पादन में भी वृद्धि होती है।

सक्रिय राइजोबियम जीवाणु की उपस्थिति का पता कैसे लगायें।

सामान्यतः राइजोबियम को सक्रिय अवस्था में आने के लिए ठीक से गांठें बनना अति आवश्यक है। गाँठों का विकास पौधे में लगभग डेढ़ से दो माह की अवधि में ठीक प्रकार से हो जाता है। बीजोपचार करके बोये गए बीज से बने पौधे की जड़ों की गाँठों का सीधे अवलोकन करके, हम इस जीवाणु की उपस्थिति का पता लगा सकते हैं। इसके लिए लगभग डेढ़ से दो माह के पौधे की जड़ से गांठ को अलग कर देते है फिर इसे साफ पानी से धोकर ठीक बीचों-बीच इसे काटते हैं। अगर अंदर गुलाबी या, हल्का - लाल रंग दिखाई दे, तो जीवाणु जीवित और सक्रिय अवस्था में है। वहीं दूसरी तरफ अगर अंदर सफेद या बिना लाल-गुलाबी हो, तो जीवाणु निष्क्रिय है या अभी सक्रिय नहीं हुआ है।

जैव उर्वरक के प्रयोग में सावधानियाँ

राइजोबियम जैव उर्वरक के उपयोग में किसान भाइयों को निम्नलिखित सावधानियाँ बरतनी चाहिए

- जैव उर्वरक जीवित उत्पाद हैं और इनके भंडारण में सावधानी की आवश्यकता होती है। इसे हमेशा धूप और गर्मी से दूर, ठंडी और सूखी, छायादार जगह पर रखना चाहिए।
- जैव उर्वरक खरीदते समय यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि प्रत्येक पैकेट पर सभी आवश्यक जानकारी दी गई हो जैसे उर्वरक का नाम, जिस फसल के लिए वह बनाया गया है उसका नाम, निर्माता का नाम और पता, निर्माण की तिथि. समाप्ति की तिथि, बैच संख्या और उपयोग के लिए निर्देश।
- राइज़ोबियम जैव उर्वरक किसी खास फ़सल के लिए होता है। इसलिए इसका इस्तेमाल उस फ़सल के लिए ही करना चाहिए। अन्य फसल के कल्चर उपयोग करने से जड़ों में गांठे नहीं बनेगी और कल्चर का फ़ायदा फसल को कम मिलेगा।
- फसल और कंपनी के मापदंडों के अनुसार ही उर्वरक का उपयोग उचित मात्रा में करें।
- जैव उर्वरकों का इस्तेमाल सही संयोजन में करना चाहिए तथा किसी भी रासायनिक उत्पाद के साथ नहीं मिलाना चाहिए।
- जैव उर्वरक का उपयोग करने से पहले और बाद में खेतों की मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।
- गर्म. शुष्क मौसम या तेज धूप में जैव उर्वरकों का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।
- यदि बीजों को कीटनाशक और फफूँदनाशक से भी उपचार करना हो, तो क्रमशः फफूँदनाशी, कीटनाशी और अंत में राइजोबियम कल्चर से उपचारित करना चाहिए।
- बीज उपचार की तैयारी करने के पश्चात ही राइजोबियम कल्चर का पैकेट खोलें।
- सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त करने के लिए नाइट्रोजन और फॉस्फेट दोनों जैव उर्वरकों का उपयोग किया जाना चाहिए।
- रासायनिक उर्वरकों और जैविक खादों के साथ-साथ जैव उर्वरकों का उपयोग करना महत्वपूर्ण है। जैव उर्वरक उर्वरकों का विकल्प नहीं हैं.लेकिन पौधों की पोषक तत्वों की आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।

जैव उर्वरक के प्रयोग में बाधाएँ

- इसे भंडारण करना मुश्किल है और रासायनिक उर्वरक की तुलना में इसका जीवनकाल कम हो सकता है।
- पौधों की वृद्धि और विकास के लिए मुख्य मैक्रोन्यूट्रिएंट्स और माइक्रोन्यूट्रिएंट्स पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हो सकते है। इसके कारण पोषक तत्वों की कमी मौजूद हो सकती है।
- इसके उपयोग के लिए मशीनरी या उपकरणों के विशिष्ट सेट की आवश्यकता होती है।
- बाजार में जैव उर्वरक की अनुपलब्धता और किसानों में इनके प्रति जागरूकता की कमी।

निष्कर्ष

राइजोबियम मिट्टी में पाए जाने वाले जीवाणु का एक प्रकार है, जो फलीदार पौधों के साथ पारस्परिकता को स्थापित करने और अंतः वायुमंडलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण का काम कर. पौधो को नाइट्रोजन की पूर्ति करता है। राइज़ोबियम जैव उर्वरक की अलग अलग प्रजातियाँ हर किसी खास फ़सल के लिए होता है इसलिए फसल के अनुसार ही इसकी प्रजातियाँ का प्रयोग करना चाहिए। इस जैव उर्वरक का उपयोग मुख्यतः बीजोपचार में किया जाता है। यह न सिर्फ फसल को नाइट्रोजन उपलब्ध करवाता है बल्कि मिट्टी की उर्वरता, कार्बनिक पदार्थ ह्यूमस की वृद्धि तथा मृदा की भौतिक एवं रासायनिक स्थिति में भी सुधार करता है। यह रासायनिक उर्वरकों के उपयोग को भी कम करता है, जिनसे कृषि लागत में भी कमी आती है। कुछ खास बात जैसे भंडारण, रख रखाव तथा दिए गये मापदंड के अनुसार प्रयोग से किसान भाई इसका न सिर्फ फ़ायदा उठा सकते है बल्कि फसल की उत्पादन और मिटटी की उर्वरता को भी लम्बे समय तक बना के रख सकते है

❖❖

ISSN No. 2583-3316

जलवायु परिवर्तनः कृषि और खाद्य आपूर्ति पर एक खतरा

विकास प्रताप सिंह*, पलाश रॉय एवं हिमांशु शर्मा

पादप संरक्षण एवं कृषि तकनीकी विभाग, वै.औ.अ.प.- राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

पत्राचारकर्ता: vikashsingh1851999@gmail.com

परिचय

जलवायु परिवर्तन आज विश्वभर में कृषि और खाद्य सुरक्षा पर गहरा प्रभाव डाल रहा है। बढ़ते तापमान, अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़ और अन्य प्राकृतिक आपदाएँ कृषि उत्पादन और खाद्य आपूर्ति चेन को प्रभावित कर रही हैं। यह समस्या केवल पर्यावरणीय संकट तक सीमित नहीं है बल्कि यह वैश्विक खाद्य संकट का कारण बन सकती है, जिससे दुनिया के विभिन्न हिस्सों में भूख, कुपोषण और सामाजिक असंतुलन उत्पन्न हो सकते हैं। इस लेख में हम जलवायु परिवर्तन के दीर्घकालिक प्रभावों, उनके कारण उत्पन्न होने वाले संकटों और इन समस्याओं के समाधान के लिए वैश्विक रणनीतियों पर चर्चा करेंगे।

जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाले संकट

मौसम स्वरूप में बदलाव

जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम में अत्यधिक बदलाव आ रहे हैं। अनियमित वर्षा, सूखा, या अत्यधिक बारिश की घटनाएँ बढ़ रही हैं। इस वजह से फसलों की बुवाई, सिंचाई और कटाई के समय में बदलाव हो रहा है, जिससे उत्पादन में गिरावट आ रही है।

तापमान में वृद्धि

जलवायु परिवर्तन के कारण औसत तापमान में वृद्धि हो रही है। अत्यधिक गर्मी से विशेष रूप से गेहूँ, चावल, मक्का और दालों जैसी फसलों की उपज प्रभावित होती है। गर्मी के कारण पौधों की वृद्धि धीमी होती है और उनकी गुणवत्ता पर भी असर पड़ता है।

पानी की कमी और जल संकट

जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा और जल संकट बढ़ने की संभावना उत्पन्न हो गयी है। कृषि के लिए जल का पर्याप्त उपलब्ध होना आवश्यक है, लेकिन सूखा और जल की अनियमितता पानी की कमी का कारण बन सकती है। जलवायु परिवर्तन के कारण नदियाँ, झीलें और जलाशय सूखने का खतरा दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है, जिससे सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता प्रभावित होगी। इस स्थिति में, किसानों को अधिक जल लागत उठानी पड़ेगी और फसलों की उत्पादकता व गुणवत्ता कम हो सकती है।

दीर्घकालिक प्रभाव

कृषि उत्पादन में गिरावट

जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम में हो रहे बदलावों का सीधा असर कृषि उत्पादन पर पड़ रहा है। अधिक तापमान और अनियमित वर्षा के कारण कृषि फसलें प्रभावित हो रही हैं। गर्मी की लहरें और सूखा फसलों के विकास को बाधित कर

रहे हैं, जिससे उपज में गिरावट हो रही है। उदाहरण के लिए, भारत जैसे देशों में गेहूं, धान और मक्का जैसी प्रमुख फसलों की पैदावार में गिरावट हो सकती है, जो खाद्य संकट को और गंभीर बना सकती है।

खाद्य सुरक्षा पर संकट

जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि उत्पादों की आपूर्ति में कमी आने से खाद्य सुरक्षा पर गंभीर संकट उत्पन्न हो सकता है। विभिन्न क्षेत्रों में कृषि उत्पादन में गिरावट और खाद्य वस्तुओं की बढ़ती कीमतें गरीब और विकासशील देशों के लिए गंभीर समस्याएँ पैदा कर सकती हैं। ऐसे में, खाद्य असुरक्षा, कुपोषण और भूख की समस्या और बढ़ सकती है, जो समाज में असंतुलन का कारण बनेगी।

समाज और अर्थव्यवस्था पर असर

जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि उत्पादकता में गिरावट आने से ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर भी असर पड़ेगा। छोटे किसान, जो अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर हैं, वे इस संकट से सबसे अधिक प्रभावित होंगे। इन किसानों को वित्तीय संकट का सामना करना पड़ सकता है, जिससे उनके जीवन स्तर पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। इसके अलावा, कृषि आधारित उद्योगों और व्यापारों को भी नुकसान होगा, जो आर्थिक असंतुलन का कारण बन सकता है।

प्राकृतिक आपदाएँ और उनका प्रभाव

तूफान, बाढ़ और अन्य जलवायु-प्रेरित आपदाएँ कृषि उत्पादन को नष्ट कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, बाढ़ से खेतों में पानी भरने से फसलें खराब हो सकती हैं और तूफान के कारण खेतों में संरचनात्मक क्षति हो सकती है। इन आपदाओं से न केवल उत्पादन में कमी होती है बल्कि खाद्य आपूर्ति चेन भी प्रभावित होती है, जो वैश्विक खाद्य संकट का कारण बन सकता है।

समाधान और अनुकूलन रणनीतियाँ

जलवायु-स्मार्ट कृषि प्रथाएँ

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए जलवायु-स्मार्ट कृषि प्रथाएँ अपनाई जा सकती हैं। इनमें सूखा सहिष्णु फसलों का उत्पादन, जल संरक्षण के उपाय और उन्नत सिंचाई प्रणालियों का इस्तेमाल शामिल हैं। जलवायु-स्मार्ट कृषि के माध्यम से कृषि उत्पादन में सुधार किया जा सकता है और जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों से बचाव किया जा सकता है।

नवीन कृषि तकनीकों का उपयोग

नई और उन्नत कृषि तकनीकों का उपयोग जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने में मदद कर सकता है। इन तकनीकों में ड्रिप सिंचाई, मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के उपाय और मौसम आधारित पूर्वानुमान प्रणाली का उपयोग शामिल है। इसके अलावा, कृषि में जैविक और सहायक तकनीकों को अपनाकर पर्यावरणीय प्रभाव को कम किया जा सकता है और उत्पादन को स्थिर रखा जा सकता है।

नीतिगत समर्थन और वैश्विक सहयोग

सरकारों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को खाद्य सुरक्षा और कृषि प्रणाली को जलवायु परिवर्तन के अनुकूल बनाने के लिए ठोस नीतियाँ बनानी चाहिए। इन नीतियों में कृषि क्षेत्र में निवेश, जलवायु-स्मार्ट प्रौद्योगिकियों के लिए अनुदान और किसानों को जलवायु परिवर्तन के बारे में जागरूक करने के कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसके साथ ही, वैश्विक सहयोग के माध्यम से विभिन्न देशों को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से बचने के लिए साझा समाधान और रणनीतियाँ विकसित करनी चाहिए।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन का दीर्घकालिक प्रभाव कृषि और खाद्य आपूर्ति पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है, जो भविष्य में वैश्विक खाद्य संकट का कारण बन सकता है। इसके लिए तत्काल और ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है। जलवायु-स्मार्ट कृषि प्रथाओं, उन्नत तकनीकों और वैश्विक सहयोग के माध्यम से इस संकट से निपटा जा सकता है। केवल इस तरह के समग्र दृष्टिकोण से हम जलवायु परिवर्तन के दीर्घकालिक प्रभावों से बच सकते हैं और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित कर सकते हैं।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

2024 में कृषि का डिजिटल युग स्मार्ट तकनीकों से कृषि का पुनर्निर्माण

अंजना गुप्ता* एवं आर. एल. राउत
कृषि विज्ञान केंद्र (बालाघाट), मध्य प्रदेश
पत्राचारकर्ता: bloggersp2020@gmail.com

परिचय

2024 में कृषि प्रौद्योगिकी (AgTech) एक नई दिशा में विकसित हो रही है, जिसका उद्देश्य वैश्विक खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि को अधिक स्मार्ट, कुशल और टिकाऊ बनाना है। आधुनिक तकनीकों का उपयोग किसानों को न केवल उपज बढ़ाने में मदद कर रहा है बल्कि संसाधनों का बेहतर प्रबंधन और पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव को भी कम कर रहा है। यहाँ कुछ प्रमुख रुझान हैं, जो इस क्षेत्र को बदल रहे हैं

सटीक कृषि 2.0

सटीक कृषि AI, IOT और रियल-टाइम डेटा एनालिटिक्स के साथ आगे बढ़ रही है। 2024 में, फसल स्वास्थ्य, मिट्टी की स्थिति और पानी के उपयोग के प्रबंधन के लिए अधिक परिष्कृत, डेटा-संचालित अंतर्दृष्टि की उम्मीद की जा सकती है। उन्नत सेंसर और ड्रोन फसल वृद्धि का माइक्रो-स्तर पर विश्लेषण कर सकते हैं, जिससे इनपुट का अनुकूलन होता है और अपव्यय कम होता है। प्रमुख नवाचारों में वेरिएबल रेट टेक्नोलॉजी (VRT) शामिल है, जो एक क्षेत्र के विभिन्न हिस्सों को अनुकूलित देखभाल और पोषक तत्वों की खुराक प्राप्त करने की अनुमति देती है, जिससे उर्वरक और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग में कमी आती है।

स्वचालन और रोबोटिक्स

श्रम की कमी और दोहराए जाने वाले कार्यों को कम करने के लिए, स्वायत्त ट्रैक्टर, रोपण रोबोट और निराई मशीनें तेजी से लोकप्रिय हो रही हैं। उन्नत कृषि रोबोट अब न्यूनतम मानवीय हस्तक्षेप के साथ रोपण, छिड़काव और यहाँ तक कि कटाई जैसे कार्य कर सकते हैं। हाल के नवाचारों में AI विजन सिस्टम का उपयोग करने वाले रोबोट शामिल है, जो चयनात्मक कटाई और स्वचालित फसल निराई कर सकते हैं, जिससे जड़ी-बूटियों के उपयोग में काफी कमी आती है और जैविक खेती के तरीकों का समर्थन होता है।

AI संचालित फसल और पशु निगरानी

AI पूर्वानुमान अंतर्दृष्टि प्रदान करके फसल और पशु प्रबंधन को बदल रहा है। AI एल्गोरिदम उपग्रहों, ड्रोन और ग्राउंड सेंसर से डेटा का विश्लेषण करते हैं ताकि फसल स्वास्थ्य की निगरानी, बीमारी का पता लगाने, उपज का पूर्वानुमान लगाने और अनुकूलित कृषि प्रथाओं का सुझाव दिया जा सके। पशुधन के लिए, AI- संचालित उपकरण पशु स्वास्थ्य और व्यवहार की निगरानी कर सकते हैं, किसानों को बीमारी या तनाव जैसे मुद्दों के बारे में गंभीर होने से पहले चेतावनी देते हैं। इससे पशु कल्याण में सुधार होता है और पशुधन प्रबंधन में हानि कम होती है।

वर्टिकल और इनडोर खेती का विस्तार

शहरी और इनडोर खेती 2024 में एक बड़ी उड़ान ले रही

ISSN No. 2583-3316

है, क्योंकि बढ़ती शहरी आबादी और जलवायु की अनिश्चितता से माँग बढ़ रही है। LED लाइटिंग, हाइड्रोपोनिक्स और एरोपोनिक्स में प्रगति से वर्टिकल खेती अधिक लागत प्रभावी और कुशल हो रही है। इनडोर फार्म अब AI और रोबोटिक्स का उपयोग कर विकास की स्थिति की निगरानी और नियंत्रण करते हैं, जो पूरे साल कीटनाशक-मुक्त उत्पादन प्रदान करता है और पारंपरिक तरीकों की तुलना में 95% तक कम पानी का उपयोग करता है।

पुनर्योजी कृषि उपकरण

मिट्टी के स्वास्थ्य को बेहतर करने, जैव विविधता बढ़ाने और कार्बन को अवशोषित करने के लिए पुनर्योजी कृषि लोकप्रियता हासिल कर रही है। AgTech इस दृष्टिकोण का समर्थन कवर क्रॉप बीजिंग ड्रोन, सूक्ष्म जीवित मिट्टी संशोधन और वास्तविक समय में मिट्टी स्वास्थ्य निगरानी सेंसर जैसे उपकरणों के साथ कर रहा है। यह आंदोलन स्थिरता से परे जाकर मिट्टी के जैविक पदार्थ और जैव विविधता का पुनर्निर्माण करने का लक्ष्य रखता है, जो पारिस्थितिकी तंत्र को बढ़ावा देता है और समय के साथ उपज में सुधार भी कर सकता है।

सप्लाई चेन पारदर्शिता के लिए ब्लॉकचेन

ब्लॉकचेन तकनीक सप्लाई चेन को पारदर्शिता प्रदान करके बदल रही है, जिसमें खेत से उपभोक्ता तक का सफर शामिल है। 2024 में, ब्लॉकचेन-सक्षम प्लेटफार्म अधिक प्रमुख हो जाएंगे, जिससे उपभोक्ताओं को उनके भोजन की उत्पत्ति और स्थिरता को सत्यापित करने में मदद मिलेगी और किसानों को उचित मुआवजा मिलेगा। ब्लॉकचेन प्रमाणीकरण प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित भी कर सकता है, खाद्य सुरक्षा मुद्दों का जल्दी पता लगा सकता है और स्थिरता के साथ उत्पादित वस्तुओं के लिए प्रीमियम मूल्य निर्धारण का समर्थन कर सकता है।

कार्बन खेती और उत्सर्जन निगरानी

जैसे-जैसे कार्बन क्रेडिट और जलवायु स्मार्ट कृषि बढ़ रही है, कार्बन खेती प्रथाएँ बेहतर मूल्यवान राजस्व स्रोत बन रही हैं। अब AgTech उपकरण किसानों को मिट्टी, उर्वरक और मशीनरी से उत्सर्जन को मापने और कम करने में मदद करते हैं। स्टार्टअप्स ऐसे प्लेटफार्म विकसित कर रहे हैं, जो खेतों में कार्बन पृथक्करण को मापते और सत्यापित करते हैं, जिससे किसानों के लिए कार्बन क्रेडिट बाजारों में भाग लेने के रास्ते खुलते हैं।

जैविक इनपुट और जैव इंजीनियरिंग

माइक्रोबियल मिट्टी संशोधन, जैविक कीटनाशक और जैव उर्वरक जैसी जैविक समाधानों का उपयोग बढ़ रहा है। 2024 में, मिट्टी के स्वास्थ्य और कीट प्रतिरोध को स्वाभाविक रूप से बढ़ाने वाले उत्पादों के अधिक अपनाने की अपेक्षा करें, जो जैविक और पर्यावरण अनुकूल उत्पादों की मांग से प्रेरित है। CRISPR जैसी जीन-संपादन प्रौद्योगिकियों का उपयोग जलवायु तनाव का सामना करने वाली, कीटनाशक आवश्यकताओं को कम करने वाली और पोषण को बढ़ाने वाली फसल किस्मों को विकसित करने के लिए किया जा रहा है।

एग्री-फिनटेक नवाचार

एग्री-फिनटेक किसानों को ऐसी क्रेडिट, बीमा और वित्तीय उपकरणों तक पहुँच प्रदान कर रही है, जो पहले उनके लिए उपलब्ध नहीं थे। माइक्रोलोन, उपज-आधारित बीमा और मोबाइल बैंकिंग जैसी सेवाएँ विशेष रूप से विकासशील क्षेत्रों के किसानों को आधुनिक तकनीक में निवेश करने और उत्पादकता में सुधार करने में सक्षम बनाती हैं। AI के समर्थन से, ये फिनटेक प्लेटफार्म क्रेडिट जोखिमों का बेहतर आकलन कर सकते हैं, उपज का पूर्वानुमान लगा सकते हैं और किसानों के

लिए अनुकूलित वित्तीय सेवाएँ प्रदान कर सकते हैं, जिससे छोटे किसानों के लिए वित्तीय समावेशन को बढ़ावा मिलता है।

स्मार्ट वॉटर मैनेजमेंट और सिंचाई प्रणाली

जल की बढ़ती कमी के साथ, उन्नत सिंचाई प्रणालियाँ अब IOT, AI और वास्तविक समय के मौसम पूर्वानुमान का उपयोग करके जल उपयोग को अनुकूलित कर रही हैं। ड्रिप सिंचाई और स्वचालित स्प्रिंकलर जैसी तकनीकें अधिक सटीक होती जा रही हैं, सही मात्रा में सही समय पर पानी पहुँचाती हैं। मिट्टी में नमी के सेंसर और मौसम विश्लेषण से किसानों

को अधिक स्थायी तरीके से जल प्रबंधन करने, अपव्यय को कम करने, उपज बढ़ाने और लागत को कम करने में मदद मिलती है।

विकसित पौधे-आधारित वैकल्पिक प्रोटीन

पौधे-आधारित आहार और स्थायी प्रोटीन की लोकप्रियता बढ़ने के साथ, प्रौद्योगिकी वैकल्पिक प्रोटीन के उत्पादन और विस्तार को बढ़ा रही है। सेलुलर कृषि और किण्वन प्रक्रियाओं में नवाचार लैब-ग्रो मीट, डेयरी विकल्प और पौध-आधारित प्रोटीन के विकास को बढ़ा रहे हैं। AgTech कंपनियाँ इन विकल्पों के उत्पादन को स्केलिंग पर काम कर रही हैं, जिससे पर्यावरणीय पदचिह्न कम होता है और उन्हें मुख्यधारा के उपभोक्ताओं के लिए और अधिक सुलभ और किफायती बनाता है।

जलवायु अनुकूलन उपकरण

चरम मौसम पैटर्न पारंपरिक खेती को बाधित कर रहे हैं, जलवायु लचीलेपन का महत्व बढ़ रहा है। AgTech का उत्तर जलवायु लचीलेपन के लिए इंजीनियर फसल किस्मों, जलवायु पूर्वानुमान उपकरणों और बदलती मौसम की स्थिति के लिए

इनपुट को समायोजित करने वाले मिट्टी सेंसर के रूप में है। AI संचालित मौसम पूर्वानुमान और जलवायु जोखिम मूल्यांकन उपकरण किसानों को रोपण, सिंचाई और कटाई के बारे में सूचित निर्णय लेने में मदद कर रहे हैं ताकि फसल नुकसान को कम किया जा सके।

जीनोमिक्स और डीएनए मैपिंग

जीनोमिक्स और उन्नत डीएनए मैपिंग वैज्ञानिकों और किसानों को सूखा सहनशीलता, कीट प्रतिरोध और उच्च पोषण सामग्री जैसे वांछनीय गुणों के साथ फसलों का उत्पादन करने की अनुमति देती है। 2024 में, इस तकनीक को अपनाने की उम्मीद की जा सकती है ताकि विशिष्ट जलवायु और मिट्टी की स्थितियों के लिए अधिक लचीली फसल किस्में तैयार की जा सकें। आनुवंशिक मानचित्रण सटीक प्रजनन को भी सक्षम करता है, जो पारंपरिक प्रजनन तकनीकों की तुलना में तेज है और बाजार की मांगों के अनुसार अधिक अनुकूल है।

निष्कर्ष

2024 में AgTech के विकास का उद्देश्य किसानों के लिए तकनीकी पहुँच को सरल और किफायती बनाना है। स्मार्ट उपकरण, AI और डेटा विश्लेषण जैसी प्रौद्योगिकियाँ किसानों को जलवायु अनुकूलन, संसाधन प्रबंधन और टिकाऊ खेती में मदद कर रही हैं। इस क्रांति के साथ, कृषि न केवल उत्पादकता बढ़ा रही है, बल्कि यह वैश्विक खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण संरक्षण में भी योगदान दे रही है।

संदर्भ

- https://keenethics.com/
- https://www.newsonair.gov.in

❖❖

ISSN No. 2583-3316

स्मार्ट कृषि उपकरणों का प्रयोग और उनकी संभावनाएँ

जिज्ञासा निनामा*[1] , विक्रम पॉल[2] एवं करिश्मा सिंह[3]

[1]सस्य विज्ञान विभाग, स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

[2&3]सस्य विज्ञान विभाग, सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

पत्राचारकर्ता: Jigyasaninana9@gmail.com

परिचय

भारत की कृषि प्रणाली को अक्सर परम्परागत और श्रम-प्रधान समझा जाता है। हालाँकि, पिछले कुछ दशकों में तकनीकी प्रगति के कारण स्मार्ट कृषि उपकरणों का उपयोग बढ़ता जा रहा है। इनमें सेंसर, ड्रोन, रोबोटिक्स, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI), इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) और भू-सूचना तंत्र (GIS) जैसी नवीनतम तकनीकें शामिल हैं। ये उपकरण किसानों को फसलों की निगरानी करने, जल प्रबंधन में सुधार करने और उत्पादन को बढ़ाने में सहायता प्रदान करते हैं। प्रस्तुत लेख में स्मार्ट कृषि उपकरणों के उपयोग और उनकी संभावनाओं पर चर्चा की जाएगी।

स्मार्ट कृषि उपकरणों का उद्देश्य

स्मार्ट कृषि उपकरणों का मुख्य उद्देश्य कृषि उत्पादन प्रक्रिया को अधिक कुशल और सटीक बनाना है। इस श्रेणी में निम्नलिखित उपकरण शामिल हैं

क) सेंसर आधारित उपकरणः ये उपकरण मिट्टी के नमी स्तर, पीएच मान और तापमान जैसे घटकों की निरंतर निगरानी कर किसानों को उनके फसलों की स्थिति का सही आकलन करने में मदद करते हैं।

ख) ड्रोन टेक्नोलॉजीः ड्रोन का उपयोग फसलों की स्थिति की निगरानी, कीटों का नियंत्रण और बीजों का छिड़काव करने में किया जाता है, जिससे कार्य की गति और सटीकता में वृद्धि होती है।

ग) आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और मशीन लर्निंगः एआई और मशीन लर्निंग के माध्यम से फसलों की पैदावार का पूर्वानुमान करना संभव है। ये तकनीकें मौसम की स्थिति की भविष्यवाणी करने, कीटों और बीमारियों की पहचान करने, और उपज की गुणवत्ता का मूल्यांकन करने की क्षमता रखती हैं।

घ) इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT): IoT आधारित उपकरण किसानों को उनके खेतों से संबंधित सेंसर डेटा तक वास्तविक समय में पहुँच प्रदान करते हैं। यह सुविधा सिंचाई और खाद प्रबंधन को स्वचालित रूप से नियंत्रित करने में सहायक होती है।

स्मार्ट कृषि उपकरणों के प्रयोग के लाभ

स्मार्ट कृषि उपकरणों का उपयोग अनेक लाभ प्रदान करता है, जो कृषि उत्पादन को अधिक कुशल और टिकाऊ बनाते हैं

क) उत्पादन में वृद्धिः ये उपकरण खेतों की स्थिति और जलवायु का सटीक आकलन करने में मदद करते हैं, जो किसानों को उनके फसलों की देखभाल में मदद करने और अंतः उत्पादन को बढ़ाने का कार्य करते हैं।

ख) पानी की बचतः सेंसर और IoT आधारित उपकरण सही मात्रा में पानी का निर्धारण करने में सहायता प्रदान करते हैं, जिससे जल के संचय में मदद मिलती है और सूखे क्षेत्रों में सिंचाई की प्रक्रिया को सुगम बनाया जा सकता है।

ग) पर्यावरणीय स्थिरताः स्मार्ट उपकरणों की मदद से कृषि प्रक्रियाओं में सुधार लाना संभव है, जो पर्यावरण की रक्षा और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में भी सहायक होते हैं।

घ) समय और श्रम की बचतः कृषि क्षेत्रों में रोबोटिक्स और ऑटोमेशन का प्रयोग श्रमिकों की आवश्यकताएँ घटाता है और साथ ही साथी समय की भी बचत करता है।

भारत में स्मार्ट कृषि उपकरणों की संभावनाएँ

भारत में स्मार्ट कृषि मशीनरी के उपयोग करने की संभावनाएँ विशाल हैं, विशेष रूप से निम्नलिखित क्षेत्रों में

क) खेती की विविधताः भारतीय कृषि विभिन्न प्रकार की

विविध, जलवायु और भौगोलिक पर आधारित है। ऐसे परिदृश्य में, विभिन्न फसल और मिट्टी की स्थितियों के अनुसार बुद्धिमान कृषि उपकरणों का उपयोग किया जा सकता है।

ख) सरकार की पहलः भारत सरकार ने कृषि में डिजिटल इंडिया और आत्मनिर्भर भारत जैसे अभियान शुरू किये हैं, जिसमे स्मार्ट कृषि उपकरणों को बढ़ावा दिया गया है। प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना और प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना जैसी योजनाएँ भी किसानों को तकनीकी सहायता प्रदान करती हैं।

ग) निजी क्षेत्र की भागीदारीः स्टार्ट-अप और कृषि प्रौद्योगिकी में बड़े निजी क्षेत्र के निवेश ने स्मार्ट कृषि उपकरणों के विकास और वितरण को गति दी है।

घ) कृषि अनुसंधान संस्थानों की भूमिकाः भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) और अन्य कृषि विश्वविद्यालयों ने भी स्मार्ट कृषि उपकरणों के विकास में योगदान दिया है। ये संस्थान किसानों को प्रशिक्षित करने और नयी तकनीकों को लागू करने में मदद करते हैं।

स्मार्ट कृषि उपकरणों के उपयोग की चुनौतियाँ

स्मार्ट कृषि मशीनरी के उपयोग में चुनौतियाँ यद्यपि स्मार्ट कृषि मशीनरी की क्षमताये बहुत अधिक है, परन्तु इसके उपयोग में कुछ चुनौतियाँ है, जिनका विवरण निम्न्वत है

क) उच्च प्रारंभिक लागतः इन उपकरणों की लागत झमता छोटे और सीमांत किसानों के लिए अप्रभावी होते जाते है, जिससे उनके लिए इसे अपनाना मुश्किल हो जाता है।

ख) तकनीकी ज्ञान की कमीः ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी कौशल की कमी के कारण किसानों के लिए इन उपकरणों का प्रभावी ढंग से उपयोग करना मुश्किल है।

ग) इंटरनेट की सीमित उपलब्धताः IoT और अन्य स्मार्ट उपकरणों के लिए तेज़ और विश्वसनीय इंटरनेट कनेक्शन की आवश्यकता होती है, जो ग्रामीण भारत में हमेशा उपलब्ध नहीं होते हैं।

घ) संवेदनशीलताः स्मार्ट उपकरणों का डेटा साइबर सुरक्षा के प्रति संवेदनशील होता है, जिसके लिए पर्याप्त डेटा सुरक्षा की आवश्यकता होती है।

निष्कर्ष

स्मार्ट कृषि उपकरण भारतीय कृषि में उत्पादकता में सुधार, संसाधनों का प्रबंधन और टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हालाँकि, कार्यान्वयन के लिए सरकार, निजी क्षेत्र और अनुसंधान संस्थानों को एकीकृत तरीके से काम करना होगा ताकि छोटे और सीमांत किसानों को भी लाभ मिल सके। स्मार्ट कृषि से भारतीय कृषि को विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाया जा सकता है।

संदर्भ

- भारत सरकार, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय। (2022)। कृषि जनगणना 2020-21।
- मीणा, एच. एम., सिंह, पी., एवं शर्मा, आर. (2021)। स्मार्ट कृषि प्रथाएँः भारत में चुनौतियाँ और संभावनाएँ। जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल साइंस, 34(2), 89-98।
- अंतर्राष्ट्रीय शुष्क कृषि अनुसंधान संस्थान (ICRISAT)। (2023)। भारत में डिजिटल कृषि में प्रगति।
- सिंह, आर. एवं कुमार, वी. (2022)। कृषि में इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT)ः भारत में संभावनाएँ और चुनौतियाँ। इंडियन जर्नल ऑफ टेक्नोलॉजी मैनेजमेंट, 13(3), 44-56।
- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR)। (2021)। सटीक कृषि और भारतीय कृषि को आधुनिक बनाने में प्रौद्योगिकी की भूमिका।
- विश्व बैंक। (2023)। विकसित देशों में डिजिटल कृषिः स्मार्ट प्रौद्योगिकी की समीक्षा।
- शर्मा, ए. एवं पटेल, जे. (2023)। कृषि उत्पादकता में सुधार के लिए AI और मशीन लर्निंग की भूमिका। एशियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चर एंड डेवलपमेंट, 15(1), 112-124।
- राष्ट्रीय नीति आयोग (नीति आयोग)। (2022)। किसानों की आय दोगुनी करने में डिजिटल प्रौद्योगिकी की भूमिका।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

स्मार्ट फार्मिंगः आधुनिक कृषि की ओर एक नई दिशा

आशीष प्रताप सिंह[1]*, नीतेश कुमार[2], राखी सिंह[3], अजय कुमार[4], मेराज खान[5] एवं ऋषि शर्मा[6]

[1]उद्यान विज्ञान विभाग, स्कूल ऑफ़ एग्रीकल्चरल साइंसेस, नागालैंड यूनिवर्सिटी, मेडजीफेमा, नागालैंड

[2,3,4,5&6]पुष्प विज्ञान एवं भूदृश्य निर्माण विभाग, बाँदा कृषि एवं प्रौधोगिकी विश्वविधालय, बाँदा, उत्तर प्रदेश

पत्राचारकर्ताः aps260196@gmail.com

परिचय

संपूर्ण विश्व जीवित रहने के लिए कृषि पर निर्भर है। दुनिया की जनसंख्या में वृद्धि और लोगों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता को देखते हुए कृषि उत्पादन की माँग में वृद्धि हुई है। अब दुनिया के सामने सुरक्षा बनाए रखने हेतु उत्पादन को बढ़ाने और उत्पादकता में वृद्धि लाना सबसे बड़ी चुनौती है। स्मार्ट खेती बेहतर कृषि प्रौद्योगिकियों की शुरुआत के साथ एक उज्ज्वल भविष्य की संभावना को दर्शाती है, जिसका उद्देश्य खेती में कम लागत, बेहतर दक्षता और उच्च गुणवत्ता के उत्पादों का उत्पादन करना है। भारत की बढ़ती जनसंख्या को खाद्यान्न उपलब्ध कराने में स्मार्ट खेती की भूमिका धीरे-धीरे बढ़ रही है। स्मार्ट खेती अनुसंधान का उद्देश्य संपूर्ण कृषि प्रबंधन के लिए एक उत्तम पद्धति को परिभाषित करता है, जो संसाधनों के संरक्षण और सीमित लागत पर अधिकतम उपज और आय प्राप्त करने में सहायक है। स्मार्ट खेती में आईसीटी की आधुनिक तकनीकियों का समन्यवन कृषि कार्यों हेतु किया जाता है। इसमें अत्याधिक तकनीकियों का प्रयोग कर कृषि लागत को कम से कम रखते हुए सघन खेती की पद्धतियों को अपनाया जाता है। इनमें विशेष रूप से ड्रोन उपयोग, सेंसर फार्म आधारित मोबाइल परामर्श से संबंधित तकनीकियों का उल्लेख किया जा सकता है। इसके अंतर्गत न्यूनतम आदानों और सीमित भूमि का उपयोग करते हुए अधिकतम उपज प्राप्ति का लक्ष्य रखा जाता है। इसके लिए सही मात्रा में समस्त आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति पौधो को की जाती है। इन तत्वों की मात्रा का निर्धारण मृदा परीक्षण और पौधों की नवीन किस्मों के अनुसार किया जाता है। स्मार्ट खेती की अवधारणा को तीन हिस्सों में विभाजित कर देखा जा सकता है। इनमें प्रबंधन सूचना प्रणाली, सटीक खेती और स्वचालित खेती (आटोमेशन और राबोटिक्स) सम्मिलित है। 21वीं शताब्दी के किसानों को अब जीपीएस, मृदा स्कैनिंग, आंकड़ा प्रबंधन तथा इंटरनेट आधारित प्रौद्योगिकियाँ सुलभ है और इनके द्वारा कीटनाशकों एवं उर्वरकों की दक्षता बढ़ा सकते हैं। इसके अतिरिक्त अब भारतीय किसान स्मार्ट फोन, आईटी, रोबोटिक्स, ड्रोन, मशीन लर्निंग इत्यादि तकनीकियो का प्रयोग करने में रुचि दिखा रहे हैं।

स्मार्ट खेती का महत्व

स्मार्ट बनाने का यह तात्पर्य है कि सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से हम उपयोग में आने वाली हर वस्तु और सेवाओं का दक्षतापूर्वक प्रयोग कर सकें और उसकी निरंतरता को भी बनाए रखें।
स्मार्ट कृषि से तात्पर्य वर्तमान समय की प्रौद्योगिकी से प्रबलित व यंत्रीकृत कृषि पद्धति के अनुप्रयोग से है, जो लचीला होने के साथ-साथ आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में सहायक है। कृषि क्षेत्र को आत्मनिर्भर बनाने और इसे आगे भी कायम रखने के लिए सरकार दूरगामी सोच के साथ आगे बढ़ रही है और इस दिशा में प्राकृतिक खेती को प्रोत्साहन एक अहम कदम है।
स्मार्ट खेती एक कृषि प्रबंधन अवधारणा को संदर्भित करती है, जो कृषि उत्पादों की गुणवत्ता और मात्रा बढ़ाने के उद्देश्य से

आधुनिक तकनीक का उपयोग करती है। इस स्मार्ट खेती में उपग्रह आधारित विशिष्ट फसल प्रबंधन, इंटरनेट ऑफ विग्स, आधारित उपकरणों जैसे सेंसर, रोबोट, ड्रोन आदि के प्रयोग के आधार पर एक कृषि प्रबंधन अवधारणा सम्मिलित है। छोटे और बड़े पैमाने पर वर्षों से स्मार्ट खेती सभी किसानों के लिए उपयोगी हो गई है, इसमें किसानों को प्रौद्योगिकियों और उपकरणों तक पहुँच मिलती है, जो खेती की लागत को कम करते हुए उत्पादों की गुणवत्ता और मात्रा का अधिकतम करने में सहायक होते है।

स्मार्ट फार्मिंग के प्रमुख सिद्धांत

समार्ट खेती में सेंसर द्वारा आँकड़ों को मिश्रित किया जाता है और मौसम की जैसी स्थिति हो, मृदा की गुणवत्ता, फसल की वृद्धि की प्रगति या मवेशियों का स्वास्थ्य आदि से संबंधित आँकड़ों को एकत्र करते हैं। इन आँकड़ों का उपयोग कृषि व्यवसाय की स्थिति को सामान्य रूप से ट्रैक करने के लिए किया जाता है, जिसमें किसानों का प्रदर्शन, उपकरण दक्षता आदि भी सम्मिलित होती है और यह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आँकड़ों पर आधारित स्मार्ट खेती से आंतरिक प्रक्रियाओं पर बेहतर नियंत्रण होता है और परिणामस्वरूप उत्पादन का जोखिम कम होता है। उत्पादन के जोखिम दूर करने की क्षमता किसान को बेहतर उत्पाद वितरण की योजना बनाने के लिए प्रेरित करती है। किसान को इस बात की जानकारी फसल की कटाई से पूर्व ही हो जाती है कि वह कितनी फसल काटने जा रहा है और वह यह भी सुनिश्चित कर सकते है कि कितने उत्पादन को बाजार भेजना है और कितना भंडार में रखना है। स्मार्ट खेती में जब उत्पादन पर नियंत्रण बढ़ता है, तो लागत प्रबंधन और अपशिष्ट में कमी आती है।

स्मार्ट फार्मिंग में उपयोग की जाने वाली तकनीकें

स्मार्ट खेती में मुख्यतः निम्नलिखित तकनीकों का अलग-अलग प्रकार से उपयोग समाहित है, जैसे;

- सेंसर का उपयोग जल, प्रकाश, आर्द्रता और तापमान प्रबंधन तथा मृदा स्कैनिंग के लिए विभिन्न प्रकार से किया जाता है।
- दूरसंचार प्रौद्योगिकयाँ जैसे उन्नत नेटवर्किंग और जीपीएस।
- वस्तुओं के इंटरनेट के नवाचार (आईओटी) आधारित समाधान, रोबोटिक्स और स्वचालन को सक्षम करने के लिए हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर का उपयोग किया जाता है।
- निर्णय लेने और कीट, रोग एवं मौसम आधारित भविष्य अनुमान हेतु आँकड़ा विश्लेषण उपकरण का उपयोग किया जाता है।
- फसल की पैदावार, मृदा-मानचित्र, जलवायु परिवर्तन, उर्वरक अनुप्रयोगों, मौसम आँकड़े, मशीनरी और पशु स्वास्थ्य से सबंधित महत्वपर्ण आँकडों का संग्रह स्मार्ट खेती द्वारा आसानी से किया जा सकता है।
- दूरस्थ निगरानी एवं लगातार आँकड़े संग्रह करने हेतु उपग्रह और ड्रोन आधारित आईटी पद्धति का उपयोग किया जाता है।

स्मार्ट खेती हेतु उन्नत स्मार्ट तकनीकियाँ

स्मार्ट खेती आधुनिक खेती की पर्याय बन चुकी है, अतः इसकी परिकल्पनाओं को मूर्त रूप देना बदलते परिवेश में खेती के लिए आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित तकनीकियों का ज्ञान किसानों को होना आवश्यक है, जैसे;

क) जलवायु स्मार्ट तकनीकियाँ

मौसम के पूर्वानुमान की जानकारी किसानों को उनके, मोबाइल फोन पर संदेश द्वारा दी जाती है जैसे किसानों को फसल के कीटों से सुरक्षा, बीमारी, सिंचाई इत्यादि का जानकारी देना। इस तरह की एसएमएस की सेवायें कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केंद्र, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के एम किसान पोर्टल से दी जा रही है, जिससे तत्कालिक फसल संबंधी विभिन्न पहलुओं पर निर्णय लेने में सहायता मिलती है।

ख) जल सुरक्षा के लिए उन्नत तकनीकियाँ

धान की सीधी बुवाई, मक्का फसल विविधीकरण खेती, मेड़ के ऊपर बुवाई, भूमि समतलीकरण, धान में वैकल्पिक जल प्रबंधन एवं जीरो टिलेज तकनीक सेंसर आधारित जल प्रबंधन तकनीक कूड़ एवं मेड़ पर बुवाई प्रणाली इत्यादि की जानकरी होनी चाहिए।

ग) पोषक तत्व स्मार्ट तकनीकियाँ

सेंसरों व सॉफ्टवेयर के द्वारा खेत में पोषक तत्वों का प्रबंधन किया जाता है खेत में पोषक तत्व प्रबंधन, धान एवं गेहूँ में पोषक तत्व विशेषज्ञ सॉफ्टवेयर के द्वारा उर्वरक की मात्रा का निर्धारण, ग्रीन सीकर से नाइट्रोजन माँग की गणना कर प्रयोग,

दलहनों का दो धान्य फसलों के बीच समावेश इत्यादि की जानकारी दी जाती है।

घ) ऊर्जा स्मार्ट तकनीकियाँ

कम ईंधन की खपत से अधिक खेत की बुवाई करना जैसे- जीरो टिलेज़, रोटरी डिस्क सीडड्रिल से बुवाई करना, टर्बो हैप्पी सीडर से अधिक फसल अवशेषों में बुवाई करना। फसल अवशेष का प्रबंधन, धान की सीधी बुवाई करना इत्यादि।

ङ) ज्ञान स्मार्ट तकनीकियाँ

आधुनिक खेती ज्ञान आधारित होती जा रही है। अतः क्षमता विकास के द्वारा किसानों और उनके साथ काम करने वाली संस्थाओं के सदस्यों को समय-समय पर विभिन्न प्रशिक्षण द्वारा कुशल बनाने का प्रयास किया जाता है। ज्ञान स्मार्ट में सूचना एवं प्रसारण तकनीकियाँ, महिला सशक्तिकरण व क्षमता विकास मुख्य तकनीकियों को सम्मिलित कर ज्ञान का शीघ्र संचार आवश्यक है। इसमें इंटरनेट आधारित विभिन्न ऐप का प्रयोग आवश्यक है।

स्मार्ट खेती का उपयोग

स्मार्ट खेती एक प्रबंधन अवधारणा है, जो कृषि उद्योग को उन्नत तकनीक का लाभ उठाने के लिए बुनियादी ढाँचा प्रदान करने पर केंद्रित है। जिसमें बड़े आँकड़े, मौसम और इंटरनेट ऑफ थिंग्स शामिल हैं, जो संचालन पर नजर रखने, स्वचालित करने और विश्लेषण करने के लिए उपयोग होते हैं। स्मार्ट खेती में उपग्रह आधारित उपकरणों जैसे- सेंसर, रोबोट, ड्रोन आदि के प्रयोग से उत्तम खेती, उत्पादकता और आयु बढ़ाने, जलवायु के अनुकूल खेती और उच्च उत्पादन के साथ फसलों में अंतर और क्षेत्र परिवर्तनशीलता को देखने, मापने और आँकड़े के विश्लेषण के आधार पर अच्छे कृषि प्रबंधन को अपना कर स्मार्ट खेती की जा सकती है।

कृषि क्षेत्र में स्मार्ट खेती के उन्नत तरीकों का उपयोग

क) फसल जल प्रबंधनः कृषि गतिविधियों को कुशल ढंग से करने के लिए पर्याप्त जल आवश्यकता होती है। सिंचाई के लिए उचित जल प्रबंधन सुनिश्चित करने एवं जल की बर्बादी को कम करने के लिए कृषि आईओटी को वेबमैप सर्विस और सेंसर ऑब्जर्वेशन सर्विस के साथ पानी की बर्बादी को रोका जा सकता है।

ख) सटीक कृषिः मौसम की जानकारी के संदर्भ में उच्च सटीकता की आवश्यकता होती है, जिससे फसल के नुकसान की संभावना कम हो जाती है। कृषि आईओटी किसानों को मौसम पूर्वानुमान, मृदा की गुणवत्ता, श्रम की लागत और कीट एवं रोगों के संदर्भ में वास्तविक समय के आँकड़ों की समय पर पहुंच सुनिश्चित करता है।

ग) एकीकृत कीट प्रबंधनः कृषि आईओटी पद्धति तापमान, नमी, पौधों की वृद्धि और कीटों के स्तर की उचित जीवन आँकड़ों की निगरानी के माध्यम से किसानों को सटीक वातावरण आँकड़े प्रदान करता है ताकि उत्पादन के दौरान उचित देखभाल की जा सके।

घ) खाद्य उत्पादन एवं सुरक्षाः कृषि आईओटी पद्धति कृषि उत्पाद भंडारण हेतु गोदाम के तापमान, शिपिंग परिवहन प्रबंधन प्रणाली जैसे विभिन्न मापदंडों की सटीक निगरानी करती है और क्लाउड आधारित रिकॉर्डिंग प्रणाली को भी समेकित करती है। उपरोक्त तकनीकों के बीच कनेक्शन इंटरनेट ऑफ थिंग्स है यह सेंसर और मशीनों के बीच कनेक्टिविटी के लिए एक तंत्र है, जिसके परिणामस्वरूप एक जटिल प्रणाली प्राप्त होती है, जो प्राप्त आँकड़ों के आधार पर आपके खेत का प्रबंधन करती है। इस प्रणाली में किसान अपने खेतों की, ग्रीन हाउस, बाग आदि की दूर से अपने टैबलेट, फोन या अन्य मोबाइल डिवाइस के माध्यम से निगरानी कर सकते हैं और भविष्य की रणनीधि संबंधित निर्णय ले सकते हैं।

स्मार्ट फार्मिंग से कृषि प्रक्षेत्र में अपनाई जाने वाली विधियाँ

- **आँकड़े संग्रहः** खेत में सभी महत्वपूर्ण स्थानों पर स्थापित सेंसर मृदा, हवा आदि के बारे में आँकड़े एकत्र और संचारित करते हैं।
- **निदानः** एकत्र किए गए आँकड़ों द्वारा विश्लेषण किया जाता है और निगरानी की गई वस्तु या प्रक्रिया की स्थिति के संबंध में निष्कर्ष निकाले जाते हैं। संभावित समस्याओं की पहचान की जाती है।
- **निर्णयः** पिछले चरणों में पहचानी गई समस्याओं के आधार पर, सॉफ़्टवेयर प्लेटफ़ॉर्म का प्रबंधन करने वाला मानव उन कार्यों पर निर्णय लेता है, जिन्हें लेने की आवश्यकता होती है।
- **क्रियाएँ:** पिछले चरण में पहचानी गई क्रियाएँ निष्पादित की जाती हैं। सेंसर द्वारा मृदा, हवा, नमी आदि पर एक नया तैयार किया जाता है और पूरा अध्ययन फिर से शुरू हो जाता है।

स्मार्ट फार्मिंग के द्वारा कृषि में होने वाली उन्नति

उच्च फसल उत्पादकताः स्मार्ट खेती को अपनाने से खेती में बेहतर तकनीकों का उपयोग उत्पादकता में सुधार करता है,क्योंकि इसमें आदानों को बढ़ने और अपव्यय को कम करने पर ध्यान दिया जाता है।

कीटनाशकों, उर्वरकों और जल के उपयोग में कमीः परंपरागत कृषि में किसान जल, उर्वरकों और कीटनाशकों की मात्रा निर्धारित किए बिना एवं कई बार आवश्यकता न होने पर भी उनका उपयोग करते आए हैं। हालाँकि, स्मार्ट कृषि, पानी और अन्य रसायनों को जब भी और जहाँ भी उनकी आवश्यकता होती है और सही मात्रा में उपयोग करने की क्षमता देती है। इन रसायनों के कम उपयोग से खेती की लागत कम हो जाती है तथा खाद्य पदार्थों में भी कमी आती है।

पर्यावरण पर कम प्रभावः आजकल, स्मार्ट खेती ने रसायनों, पानी और खेत में उपयोग होने वाले अन्य तत्वों की कम से कम मात्रा के द्वारा उत्पादकता बढ़ाने के बेहतर तरीकें पेश किए हैं, निहितार्थ यह है कि हानिकारक रसायनों के अत्यधिक आवश्यकता वाले स्थान पर संयमित उपयोग के द्वारा पर्यावरण

को खराब होने से बचाया जा सकता है।

श्रमिकों और किसानों की सुरक्षा के लिए उन्नत कदमः स्मार्ट खेती मशीनों और बेहतर प्रौद्योगिकीयों के उपयोग का परिचय देती है, जिससे श्रमिकों की भागीदारी इस क्षेत्र में सीमित हो जाती हैं। अतः अब किसानों भी श्रमिकों की सुरक्षा के बारे में निश्चिन्त रह सकते हैं।

भूजल और नदियों में रासायनिक विघटन को कम करने के उपाय

स्मार्ट खेती रसायनों के उपयोग और पर्यावरण के अनुकूल कृषि पद्धतियों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करती है। इसका तात्पर्य यह है कि नदियों में और सामान्य रूप से पर्यावरण में कोई भी हानिकारक रसायन जमा नहीं होगा। आधुनिक कृषि के तहत भारत में स्मार्ट खेती की अपार संभावनाएँ हैं तथा यह भारत में कृषि आयाम को बदल सकती है। स्मार्ट खेती से विकासशील और विकसित दोनों देशों में बड़े और छोटे पैमाने के किसानों के बीच की खाई को कम करने की झमता है। कृषि में प्रौद्योगिकी को अपनाने में तकनीकी प्रगति, इंटरनेट में वृद्धि और स्मार्टफोन की शुरूआत ने बेहद योगदान दिया है। विभिन्न देश इन प्रौद्योगिकीयों के मूल्य को समझते हैं और अधिकांश देश सटीक कृषि तकनीकों के कार्यान्वयन को बढ़ावा देने के लिए उत्सुक हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि परंपरागत रूप से प्रचलित अधिकांश कृषि कार्यों में आजकल काफी बदलाव आया है। मशीनों, उपकरणों, सेंसर और सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग के रूप में स्मार्ट खेती तकनीकों और कार्य-प्रणालियों को अपनाना आदि को तकनीकी उन्नति के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। वर्तमान में किसान नमी और तापमान सेंसर, जीपीएस तकनीक और रोबोट जैसी अत्याधुनिक तकनीकों का उपयोग करते हैं। इस तरह की तकनीक खेती को न केवल लाभदायक उपक्रम बनाती है बल्कि पर्यावरण के अनुकूल, सुरक्षित और कुशल भी बनाती है।

निष्कर्ष

स्मार्ट खेती एक उत्तम खेती अवधारणा है, जिसे अगर सही तरीके से लागू किया जाए तो किसानों को बेहतर उत्पादन, बेहतर गुणवत्ता और कम लागत सहित कई लाभ मिल सकते हैं। हालांकि इस तरह के नवाचार के लिए पूँजी ज्ञान और कौशल की आवश्यकता होती है। स्मार्ट खेती तकनीक उपज के अनुमान स्थानीय मौसम पूर्वानुमान बीमारियों और आपदा की संभावनाओं की जानकारी देती है। यह खेती की आवश्यकताओं के उचित विश्लेषण के साथ सही कार्य योजना प्रस्तुत करती है। लाभदायक और टिकाऊ खेती के लिए स्मार्ट खेती का उपयोग आवश्यक है। रिमोट सेंसिंग, जीपीएस टेक्नोलोजी आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस, मशीन लर्निंग, कनेक्टेड सेंसर और आईओटी जैसी उभरती हुई प्रौद्योगिकी का उपयोग करके कृषि को स्मार्ट बनाया जा सकता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

फलों की फसलों में निष्फलताः कारण और प्रबंधन

रजनी सोलंकी[1]*, शीतल शिंदे[2] एवं विशाल पटेल[3]

[1]फल विज्ञान विभाग, [2]कृषि अर्थशास्त्र विभाग, [3]कृषि अभियांत्रिकी विभाग

श्री वैष्णव कृषि संस्थान, श्री वैष्णव विद्यापीठ विश्वविद्यालय, इंदौर, म.प्र.

पत्राचारकर्ता: rajnisolanki82@gmail.com

परिचय

फल हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण पोषण का स्रोत है विभिन्न फल अपनी विशेष गुणों के कारण हमें विभिन्न प्रकार के रोगो के बचाव करने में सहायता करते है समय-समय वे हमारे शरीर के पोषक तत्वों के कमी को पूरा भी करते है, इसलिए फलों की फसलों का किसान व्यापक पैमाने पर फसलों की खेती कर रहे है परन्तु कुछ फलों और उनकी विभिन्न किस्मों में कम फलन प्राप्त होता है, जो एक बहुत बड़ी समस्या है, जिसके परिणामस्वरूप उत्पादकों को भरी नुकसान होता है। फलोत्पादन से तात्पर्य पौधे की उस अवस्था से है जब वह न केवल फूल आने और फल लगने में सक्षम होता है बल्कि इन फलों को परिपक्वता तक भी ले जाता है। ऐसा करने में असमर्थता को निष्फलता/फलहीनता या अफलन के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार, एक फलदार पौधा, जो उत्पादक नहीं है, निष्फल है। एक बगीचे में, सभी फल वाले पेड़ समान रूप से या नियमित रूप से फल नहीं देते हैं। एक और कभी-कभी समान परिस्थितियों में फूल और फल देने में विफल हो जाते हैं और कभी-कभी फलदार पेड़ भारी मात्रा में फल देते हैं। इस प्रकार, फलहीनता फल फसलों की गंभीर समस्याओं में से एक है और प्रभावी नियंत्रण और अपेक्षित उत्पादन स्तर प्राप्त करने के लिए इसके कारण को ठीक से समझने की आवश्यकता है।

फलों की फसलों में निष्फलता के कारण

प्रतिकूल वातावरण के परिणामस्वरूप वानस्पतिक विकास और फलन के बीच संतुलन की कमी, फूलों की कमी और खराब फल के सेट होने के कारण कम फलन हो सकती है। यह अधिक फसल के कारण भी हो सकता है, जिससे अगले वर्ष कलियों और फल के उत्पादन में रुकावट आ सकती है और फसल खराब हो सकती है। किसान को होने वाले नुकसान को कम करने के लिए इसके कारण की पहचान और उचित निदान किया जाना चाहिए। निष्फलता के कारणों को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में बांटा जा सकता हैः

अ. बाहरी कारक

ब. आंतरिक कारक

अ. बाहरी कारकः इसमें शामिल हैं

क) तापमानः सभी पर्यावरणीय कारकों में तापमान का बहुत महत्व है। सामान्यतः शीत लेकिन शीत रहित (बिना पाले का शीत) मौसम की अवधि बेहतर फूल खिलने, निषेचन और फल लगने के लिए अनुकूल होता है। फूल की कली, फल आदि का विच्छेदन तापमान का एक कार्य है। आलू बुखारा, चेरी, सेब, नाशपाती आदि में पराग के अंकुरण के लिए तापमान काफी महत्वपूर्ण है जहां 4 डिग्री सेल्सियस या उससे कम तापमान पूरी तरह से इसकी वृद्धि रोक देता है। सर्दियों की ठंड और उसके बाद ठंडा मौसम फूलों की कलियों को नष्ट कर सकता है। फूल खिलने के दौरान, पाला फूलों को नुकसान पहुँचा सकता है और ठंडा तापमान परागकणों की व्यवहार्यता को कम कर सकता है। बहुत अधिक तापमान (40 डिग्री सेल्सियस) या बहुत कम तापमान पर, मधुमक्खी की गतिविधि में बाधा आती है और इस प्रकार पर-परागित फसलों में फल कम लगते हैं।

ख) आर्द्रताः वायुमंडलीय आर्द्रता के कारण वर्तिकाग्र स्राव सूख जाते हैं, जिससे परागकण अंकुरित नहीं हो पाते हैं। बारिश एक महत्वपूर्ण कारक है जो परागण, परागकणों के अंकुरण और निषेचन की प्रक्रिया को बाधित करके अप्रत्यक्ष रूप से फल लगने को प्रभावित करती है। मधुमक्खी गतिविधि में सापेक्ष आर्द्रता अपने आप में एक महत्वपूर्ण कारक है। कम तापमान और उच्च आर्द्रता का मधुमक्खी की गतिविधि को कम करने और परागकणों के निकलने को दौगुनी गति से धीमा करता है।

ग) प्रकाशः प्रकाश, प्रकाश संश्लेषण पर अपने प्रभाव से

अप्रत्यक्ष रूप से फलदायीता को प्रभावित करता है। खराब छाया वाले पौधे फूलों की कलियों में मुश्किल से विभेदीकरण कर पाते हैं। प्रकाश संश्लेषण के लिए प्रकाश पूर्व-आवश्यकता है और कम प्रकाश की तीव्रता या इसकी अवधि पेड़ों में कार्बोहाइड्रेट भंडार को कम कर देती है। इसके अलावा खराब रोशनी की स्थिति फलों के नष्ट होने को बढ़ावा देती है। परागणक गतिविधि सकारात्मक रूप से प्रकाश की तीव्रता से संबंधित होती है जो फलों के सेट को प्रभावित करती है।

घ) हवाः हवा या तो वायु-परागण को बढ़ावा देती है या कीट परागण को कम करके परागण को नियंत्रित करती है। यह वायु-परागण वाले फलों के पेड़ों के लिए वांछनीय है, लेकिन यदि इसकी गति बहुत अधिक है, तो यह हानिकारक है क्योंकि इसके परिणामस्वरूप खुली तरफ कम फल लगते हैं और दूसरी तरफ भारी फसल होती है। अधिकांश फलों की फसलें कीट-परागित होती हैं और हवा उनमें परागण में बाधा डालती है।

ङ) वर्षाः फूल खिलने के समय बारिश होने से परागकण नष्ट हो जाते हैं, जिससे परागण में रुकावट आती है और रोग तथा कीट फैलते हैं।

च) मिट्टी की नमी की स्थितिः फूल आने और फल लगने के समय मिट्टी की नमी की स्थिति भी पेड़ के फलने के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। सामान्य तौर पर, यदि फूल आने और फल लगने के दौरान नमी या तो अत्यधिक हो या पानी की कमी हो तो फल कम बनते हैं।

छ) मिट्टी की पोषण स्थितिः पुष्प विकास और फल वृद्धि अवस्था के दौरान पौधे को पोषक तत्वों की बहुत अधिक आवश्यकता होती है और यदि आवश्यक पोषक तत्व की कमी होगी तो पौधे में फूल तो आ सकते हैं लेकिन परिपक्व फल विकसित नहीं हो सकते। नाइट्रोजन उच्च और मध्यम स्तर फलों के सेट को बढ़ावा देता है, लेकिन अतिरिक्त नाइट्रोजन वानस्पतिक वृद्धि को बढ़ावा देता है और उच्च गुणवत्ता वाले फलों को कम करता है। फल लगने के समय फॉस्फोरस की पर्याप्त मात्रा फल लगने तथा उपज में वृद्धि करती है। उचित चरणों में उर्वरकों का प्रयोग करने से फल लगने, उपज और गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

ज) वृक्ष की आयु और ताकतः अत्यधिक वानस्पतिक वृद्धि पेड़ों की फलदायीता को कम कर देती है। दूसरी ओर, फसल भार का समर्थन करने के लिए अनुकूल वानस्पतिक वृद्धि बहुत आवश्यक है, अन्यथा शुरुआती या बाद के चरणों में फल गिर जाते हैं।

झ) स्थानीयताः एक ही किस्म के पेड़ों पर लगने वाले फल एक स्थान से दूसरे स्थान पर बहुत भिन्न होते हैं। मिट्टी, तापमान, आर्द्रता, प्रकाश, इत्यादि जैसी विशेषताएँ विभिन्न फलों की फसलों में, फलों के जमाव को विभिन्न प्रकार से प्रभावित कर सकती हैं। स्थानीय स्तर पर केवल पर्यावरणीय जटिलता का फल-सेट पर प्रभाव पड़ता है।

ञ) कटाई और छँटाईः पेड़ के फलने-फूलने वाले क्षेत्र को बनाए रखना एक नियमित अभ्यास है। पौधे को फलदायी स्थिति में बनाए रखने के लिए कटाई और छँटाई उचित समय और वांछित मात्रा में की जानी चाहिए।

ट) रसायन और कीटनाशकः कीटनाशकों के उपयोग से मधुमक्खियाँ मर सकती हैं, जिससे परागण कम हो जाता है। कुछ कीटनाशक नाजुक फूलों के लिए भी विषैले हो सकते हैं, जिससे विफलन हो सकता है और फल नष्ट हो सकते हैं। कीटनाशकों के छिड़काव के कारण वर्तिकाग्र की सतह क्षतिग्रस्त हो सकती है और इसके परिणामस्वरूप पराग के अंकुरण और ट्यूब के विकास में रुकावट आ सकती है।

ठ) कीट और बीमारियाँः माहू, शल्क कीट और माइट्स, कीड़े, इल्ली और टिड्डे जैसे चूसने वाले कीड़े सभी फूलों और फलों को बड़ा नुकसान पहुँचाते हैं। विशेष रूप से रोग खतरनाक हो सकते हैं और कुछ ही समय में पेड़ों को जल्दी से नष्ट कर देते है। कीटों और बीमारियों के हमले से होने वाली हानि स्थानीयता, विविधता और मौसमी भिन्नता के साथ बहुत भिन्न होती है। फूल खिलने के बाद किसी भी कीटनाशक का उपयोग नहीं करना चाहिए अन्यथा परागण और फल लगने में कमी आ सकती है।

ब. आंतरिक कारक

इन्हें आगे 3 प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया हैः

क) विकासवादी प्रवृत्तियाँ

ख) आनुवंशिक/वंशानुगत कारक

ग) शारीरिक कारक

क) विकासवादी प्रवृत्तियाँः विकास के दौरान किसी विशेष फसल को बेहतर तरीके से अपनाने के लिए कुछ ऐसे लक्षण सामने आए, जिनकी उचित देखभाल न किए जाने पर फसल बंजर हो जाती है। इनमें से कुछ लक्षणों का वर्णन नीचे किया गया हैः

• **एकलिंगी और द्विलिंगी प्रकृतिः** एक ही पौधे पर एक ही या अलग-अलग फूलों में पुंकेसर और अंडप होने वाले पौधे को एकलिंगी पौधा कहते हैं, उदाहरण के लिए आम, अमरुद, अनार। जब पुंकेसर और अंडप अलग-अलग पौधे में मौजूद

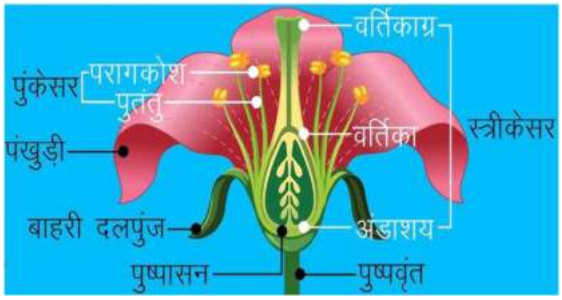

होते हैं तो पौधे को द्विलिंगी पौधा कहते हैं जैसे पपीता, टमाटर, बैगन। स्व-परागण के कारण एकलिंगी पौधे में परागण और फल लगने में कोई समस्या नहीं होती है। लेकिन यह सुनिश्चित करना चाहिए कि परागणकों की उचित उपलब्धता हो। द्विलिंगी पौधे में यदि निश्चित समय पर पराग या अंडप में से कोई भी उपलब्ध हो तो फल नहीं लगेंगे।

• **डाइकोगैमीः** जब एकलिंगी पौधे में वर्तिकाग्र ग्रहणशीलता, पराग की उपलब्धता के साथ मेल नहीं खाती है तो इसे डाइकोगैमी के रूप में जाना जाता है। प्रोटोएन्ड्रस वह स्थिति है, जिसमें पुंकेसर स्त्रीकेसर या वर्तिकाग्र से पहले परिपक्व होता है और प्रोटोगाइनस की स्थिति में स्त्रीकेसर, पुंकेसर से पहले परिपक्व होता है। इसलिए एक समय ऐसा होगा, जब परागकणों की कमी के कारण अंडा कोशिका निषेचित नहीं हो पाएगी।

संरचनात्मक विशिष्टताएँ

1. विषमपर्णी हेटेरोस्टाइलीः स्व-निषेचन को कम करने के लिए, विभिन्न व्यक्तिगत पौधों के फूलों में पुंकेसर के सापेक्ष अलग-अलग लंबाई की वर्तिका की स्थिति को निम्न चित्र में दिया गया है (उदाहरण के लिए प्राइमरोज़ में)।

2. त्रि-शैलीः लंबे, मध्यम और छोटे वर्तिका वाले फूल पैदा होते हैं, जो फलहीन हो जाते हैं।

लंबी वर्तिका   मध्यम वर्तिका   छोटी वर्तिका

• **वर्तिकाग्र ग्रहणशीलताः** यह वर्तिकाग्र परपरागकण के अंकुरण करने की क्षमता है और यह प्रभावी परागण अवधि (ईपीपी) को सीमित करता है। ईपीपी उन दिनों की संख्या है, जिसके दौरान परागण एक फल के उत्पादन में प्रभावी होता है और परागण और निषेचन के बीच के समय अंतराल को घटाकर बीजांड की लंबी उम्र से निर्धारित होता है।

• **अपरिपक्व फूल या गर्भित स्त्रीकेसर या बीजांडः** फूल के विकास में या बीजांड/पुंकेसर और उनके कार्य के पूर्ण विकास में हस्तक्षेप से फलहीनता हो सकती है।

• **अक्षम परागः** यह अकार्यात्मक पराग (गैर-व्यवहार्य या दोषपूर्ण पराग का उच्च प्रतिशत) या बीजांड के कारण होता है।

• **बंध्यताः** कुछ प्रजातियों में ऐसे जीन होते हैं, जो पराग या बीजांड के विकास को रोकते हैं। आम तौर परबंध्यमता, परागया भ्रूणकोश या भ्रूण या भ्रूणपोष के असामान्य विकास के कारण होता है।

ख) आनुवंशिक / वंशानुगतकारक

• **बंध्य संकरों के कारणः** संकरता बंध्यता के साथ-साथ निष्फलता से भी जुड़ी है। व्यापक संकरण से अफलन का प्रतिशत बढ़ जाता है।

• **बेजोड़ताः** बेजोड़ता / असंगति को एक ही किस्म (स्वयं असंगति) या विभिन्न किस्मों (क्रॉस असंगति) के फूल की वर्तिकाग्र में जीवक्षम परागकण के अंकुरित होने की विफलता के रूप में परिभाषित किया गया है।

• **अंतर-फलनशीलता और अंतर-प्रजनन क्षमताः** दो पौधों या दो किस्मों की एक-दूसरे के पराग के साथ फल लगाने और बीज विकसित करने की क्षमता को अंतर-फलनशीलता या अंतर-प्रजनन क्षमता कहा जाता है।

ग) शारीरिक कारक

• **पराग नली की धीमी वृद्धिः** वर्तिका में पराग नलिका की खराब वृद्धि दर, संभवतः हार्मोनल, पोषण और पर्यावरणीय स्थितियों के कारण वृक्ष फलहीन हो जाते है।

• **समय से पहले या देर से परागणः** समय से पहले परागण (स्त्री केसर में विषाक्तता के कारण), इसी तरह, यदि परागण में देरी होती है, तो फूल बिना जमे ही गिर जाता है।

• **पौधे की पोषक स्थितिः** फूल आने और फलों के विकास के समय आवश्यक पौधों के पोषक तत्वों की कमी के कारण फल खराब होते हैं, अधिक फल गिरते हैं और यहाँ तक कि स्त्री केसर भी गिर जाता है। दोषपूर्ण स्त्री केसर विशेष रूप से अधिक फल लगने, सूखे और खराब पोषण के कारण कमजोर पौधों पर बनते हैं।

• **विभिन्न स्थितियों में फूलों का फल लगनाः** सामान्य पोषण सबंधित परिस्थितियों में फल परिपक्व और स्थिर होते

ISSN No. 2583-3316

है परन्तु टर्मिनल विकास पर पैदा होने वाले फलों की फसलों में अधिक प्रतिस्पर्धा होती है क्योंकि फूलों के लगने का प्रतिशत कम होता है। यह स्थितिगत प्रतिस्पर्धा फलों और शाखाओं के साथ-साथ फलोत्पादकता को प्रभावित करने वाले विभिन्न फलों के बीच भी होती है।

निष्फलता का प्रबंधन

क) उचित पोषणः आमतौर पर पोषक तत्वों की अच्छी तरह से संतुलित आपूर्ति करके उचित फल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। आमतौर पर फूल आने और फल लगने को बढ़ावा देने के लिए फूल आने से कुछ दिन पहले उर्वरकों का प्रयोग करना बेहतर होता है। विभिन्न पोषक तत्वों (N, P, K, Ca, Mg, Zn और B) का संतुलित अनुप्रयोग (मिट्टी / छिड़काव अनुप्रयोग) पौधों के फलदायी व्यवहार को बनाए रखने में एक विशिष्ट भूमिका निभाता है।

ख) फलन और वानस्पतिक वृद्धि को संतुलित करनाः फलों के पेड़ों की ताक़त को नियंत्रित करने और उनकी सापेक्ष फलशीलता बढ़ाने की मुख्य तकनीकें बौनी मूल, कटाई और छँटाई प्रणाली हैं। कटाई और छँटाई की मात्रा मौसम और पेड़ के प्रकार के अनुसार अलग-अलग होती है। फलन और वानस्पतिक वृद्धि को संतुलित करना, बौने रूटस्टॉक्स, कॉम्पैक्ट, शॉर्ट-इंटर्नोड (दो गाँठों के मध्यप के पेड़ के तने का भाग) के कलम और विकास अवरोधकों का उपयोग वृक्ष प्रशिक्षण और छँटाई प्रणालियाँ जो क्षैतिज या चौड़े कोण देती हैं, फलदार वृक्षों की ताक़त को प्रबंधित करने के लिए शाखाएँ की छँटाई द्वारा उनकी सापेक्ष फलदायीता को बढ़ावा देना प्रमुख उपाय हैं। पेड़ों की कटाई और छँटाई विवेकपूर्ण और उचित तरीके से की जानी चाहिए। ध्यान रहे, अत्यधिक काट-छाँट अत्यधिक वानस्पति वृद्धि और उपज में कमी को प्रोत्साहित करती है।

ग) फूलों को प्रेरित करनाः पादप वृद्धि नियामकों के अनुप्रयोग से कई फलों के पेड़ों की फलहीनता को इसके द्वारा दूर किया जा सकता है। आमतौर पर, जिबरेलिन्स फूलों को प्रेरित करने/ फूलों को बढ़ावा देने के लिए उपयोग किया जाता है।

घ) फल सेट और प्रतिधारण में वृद्धि और प्रेरणः विभिन्न विकासात्मक चरणों में कम फल सेट प्रतिशत और विगलन के कारण फलहीनता में वृद्धि होती है। फूल आने या फल सेट होने पर पौधे के विकास पदार्थों (जिबरेलिन) का अनुप्रयोग प्रतिधारण में बढ़ावा देने के लिए किया जा सकता है।

ङ) फूल की गुणवत्ता का नियंत्रणः फल लगने से मापा जाता है, यह पेड़-दर-पेड़ और एक मौसम से दूसरे मौसम में भिन्न होता है। इसे शाखाओं को झुकाकर और उर्वरकों के अनुप्रयोग द्वारा सुधारा जा सकता है।

च) परागण पर नियंत्रणः कीटनाशकों के अंधाधुंध उपयोग और पारिस्थितिकी तंत्र के बिगड़ने के कारण प्राकृतिक परागणकों की आबादी कम हो गई है। अधिकांश मामलों में परागणक किस्मों और परागणकों के उपयोग से फलों के सेट में सुधार होता है। परागण प्रबंधित मधुमक्खियाँ अत्यंत सीमित हैं और मौजूदा मधुमक्खी कॉलोनियाँ केवल 2-3% की आपूर्ति कर सकती हैं। कॉलोनियों को क्रमिक रूप से समाविष्ट करने से प्रति पेड़ मधुमक्खियों की संख्या और पंक्तियों के बीच उनकी गतिशीलता बढ़ जाती है, जिसके परिणामस्वरूप फल लगने और उपज में 50-80% की वृद्धि होती है।

छ) फसल भार में कमीः आवश्यकता से अधिक फसल होने के कारण फलों की गुणवत्ता में गिरावट होना एक और बहुत आम कारण है। प्रति पौधे फलों की संख्या कम करने का पहला तरीका छंटाई करना है। मौसम की शुरुआत में फलों की छंटाई करने से जरूरी नहीं कि उपज कम हो जाए, बल्कि फल की गुणवत्ता में सुधार होता है और अगले वर्ष उपज बढ़ जाती है और कम फलन की समस्या से बचा जा सकता है।

ज) संकरणः कुछ अध्ययनों से पता चला है कि आम में पराग नलिकाएँ वर्तिका में बढ़ती हैं और निषेचन को प्रभावित करती हैं लेकिन सैप्रोफाइटिक प्रकार की असंगति के कारण युग्मनज का विकास अवरुद्ध हो जाता है। बड़े पैमाने पर संकरण द्विवार्षिक असर समस्या का समाधान प्रदान कर सकता है।

निष्कर्ष

विफलन फलों की फसलों की गंभीर और जटिल समस्याओं में से एक है और यह विकास और फलन के बीच संतुलन की कमी के कारण हो सकती है। विभिन्न आंतरिक और बाह्य कारकों के परिणामस्वरूप फूल नहीं आना और ख़राब फल बनने की समस्याएँ होती है अतः सुधारात्मक उपाय करना आवश्यक है। फलों की फसल और उनके किस्में जलवायु और शैक्षणिक कारकों के आधार पर चयन किया जाना चाहिए। अलग-अलग किस्मों की खेती की जानी चाहिए और प्रभावी परागणकर्ता (शहद मधुमक्खी) की गतिशीलता में बढ़ोतरी की जानी चाहिए। उचित तरीके से कटाई और छँटाई, विगलन और फसल नियमन का अभ्यास किया जाना चाहिए और नियमित फल देने वाली किस्मों का उत्पादन किया जाना चाहिए। मूलतः विवेकपूर्ण योजना बनाकर और सही उत्पादन तकनीक का पालन किया जाना चाहिए ताकि भविष्य समस्या रहित हो।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

गेहूँ की फसल को बीमारियों से बचाएँ: सिंचाई के बाद रोग नियंत्रण का महत्व

अंकिता राव[1] एवं के. के. मिश्र[2]*

[1]सस्य विज्ञान विभाग, [2]उद्यान विज्ञान विभाग

नारायण कृषि विज्ञान संसथान, गोपाल नारायण सिंह विश्वविद्यालय, रोहतास, बिहार

पत्राचारकर्ता: kkmishrababbu@gmail.com

परिचय

गेहूँ भारत देश की प्रमुख खाद्यान्न फसल है। क्षेत्रफल व उत्पादन की दृष्टि से गेहूँ की खेती रबी सीजन में महत्वपूर्ण रूप से की जाती है। उत्तर भारत में गेहूँ की खेती मुख्य रूप से हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, उत्तराखंड तथा मध्य प्रदेश में की जाती है गेहूँ की खेती में सिंचाई और उर्वरकों का सही प्रबंधन फसल की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पहली सिंचाई के बाद रोगों के प्रकोप की संभावना अधिक होती है, क्योंकि इस समय फसल में नमी और तापमान के उचित स्तर पर रोगजनकों (जैसे कवक और बैक्टीरिया) की वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण बन जाता है। गेहूँ में मुख्य रोग जैसे पीला रस्ट (स्ट्राइप रस्ट), ब्राउन रस्ट, ब्लास्ट और पत्ती धब्बा रोग (लीफ ब्लाइट) इस समय अधिक फैल सकते हैं। प्रारंभिक अवस्था में रोग के लक्षण पहचानकर नियंत्रण करना आसान होता है।

गेहूँ की फसल में रोग प्रबंधन

गेहूँ की फसल की बुवाई के समय ही गेहूँ में लगने वाले रोगो की पहचान एवं नियंत्रण जानकारी मिल जाये, तो गेहूँ के उत्पादन में आशातीत वृद्धि हो सकती है रोग प्रबंधन के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं

क) फसल का नियमित निरीक्षण करें: पहली सिंचाई के बाद खेत का नियमित निरीक्षण करें और पौधों पर किसी भी प्रकार के रोग के लक्षण, जैसे पत्ती पर धब्बे, झुलसा या पीलेपन की पहचान करें।

ख) रोगों को रोकने के लिए जल प्रबंधन: पहली सिंचाई के बाद खेत में जलभराव न होने दें, क्योंकि अत्यधिक नमी रोगजनकों के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करती है। सिंचाई का समय मौसम की स्थिति और मिट्टी के प्रकार को ध्यान में रखकर तय करें। यदि पहली सिंचाई के बाद पाला (फ्रॉस्ट) पड़ने की संभावना हो, तो हल्की सिंचाई करें ताकि पौधों को ठंड से बचाया जा सके।

ग) उर्वरकों का संतुलित उपयोग: अत्यधिक नाइट्रोजन उर्वरक का प्रयोग न करें, क्योंकि यह फसल में कोमल और रसीले ऊतकों को बढ़ावा देता है, जो रोगजनकों का आसान शिकार बन सकते हैं। पोटाश और फॉस्फोरस उर्वरक का संतुलित उपयोग पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक होता है। जिंक और सल्फर जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों का भी संतुलित उपयोग करें।

घ) रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन: बुवाई से पहले रोग प्रतिरोधी गेहूँ की किस्मों का चयन करें। जैसे कि पीला रस्ट और पत्ती धब्बा रोग के प्रतिरोधी किस्में। भारतीय कृषि अनुसंधान

संस्थान (IARI) और केंद्रीय एवं राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा अनुशंसित किस्मों का उपयोग करें।

ङ) खेत की स्वच्छता और फसल अवशेष प्रबंधनः फसल के अवशेषों को खेत से हटा दें या जैविक खाद बनाने के लिए उपयोग करें। खेत में रोगग्रस्त पौधों को तुरंत निकालकर नष्ट करें। अवशेष जलाने से बचें, क्योंकि यह मिट्टी के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

ज) मिश्रित फसल प्रणाली अपनाये: गेहूँ के साथ सरसों, चना या धनिया जैसी सहफसली फसलें उगाये। ये फसलें रोगों के चक्र को तोड़ने में सहायक होती हैं। मिश्रित फसल प्रणाली से पौधों के बीच उचित वायुप्रवाह बना रहता है, जिससे नमी का स्तर नियंत्रित रहता है।

च) रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाले उपाय: पहली सिंचाई के बाद पौधों पर सिलिकॉन-आधारित उत्पादों का छिड़काव करें, जो पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं। समुद्री शैवाल (सीवीड) से बने जैव उर्वरकों का छिड़काव करें, जिससे पौधों का विकास बेहतर होता है।

छ) मौसम और फसल की स्थिति का ध्यान रखें: पहली सिंचाई के बाद यदि ठंड और नमी बढ़ जाती है, तो पीला रस्ट का खतरा अधिक होता है। ऐसे में रोग प्रबंधन के लिए फफूँदनाशक का समय पर छिड़काव करें। यदि तापमान अधिक हो, तो जड़ क्षेत्रों में जलवाष्प के संतुलन को बनाए रखें।

ज) रोग की निगरानी और सूचना प्रणाली का उपयोग करें: क्षेत्रीय कृषि विश्वविद्यालयों या कृषि विभाग से रोग प्रबंधन के लिए सलाह लें। कृषि वैज्ञानिकों द्वारा जारी अलर्ट और सुझावों का पालन करें।

रोग एवं उपचार

अ) जैविक उपचार

- **कवकनाशी का उपयोग:** ट्राइकोडर्मा विरिडी या Pseudo-monas fluorescen जैविक कवकनाशी का उपयोग करें।
- **बीज उपचार:** जैविक कवकनाशी 5-10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से प्रयोग करें।
- **मिट्टी उपचार:** 2.5 किलोग्राम जैविक कवकनाशी को 50 किलो गोबर खाद के साथ मिलाकर खेत में डालें। खेत में रोग का प्रकोप दिखाई देने पर जैविक घोल का छिड़काव करें।

ब) रासायनिक उपचार

- **पीला रस्ट (स्ट्राइप रस्ट):** यह रोग, ठंड और नमी भरे मौसम में तेज़ी से फैलता है यह गेहूँ के पत्तों को प्रभावित करता है, जिससे प्रकाश संश्लेषण कम होता है और अनाज की उपज घट जाती है इस रोग से बचने के लिए प्रोपिकोनाज़ोल 25% EC (0.1%) या टेबुकोनाज़ोल 50% ट्रायफ्लो-क्सीस्ट्रोबिन 25% WG (0.1%) का छिड़काव करें।
- **पत्ती धब्बा रोग (लीफ ब्लाइट):** यह एक फ़ंगल संक्रमण है, जो पत्तियों पर धब्बे पैदा करता है इस रोग से बचने के लिए मैंकोज़ेब 75% WP (2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें।
- **ब्लास्ट रोग:** यह एक तरह की फ़ंगल संक्रमण है, जो गेहूँ की फ़सलों को प्रभावित करता है इस रोग से बचने के लिए स्ट्रोबिलुरिन वर्ग के फफूँदनाशकों का उपयोग करें।

निष्कर्ष

गेहूँ की फसल को बीमारियों से बचाने के लिए यह सुनिश्चित करना भी जरूरी है कि फसल पर रोग लगने से पहले निवारक कदम उठाये, ताकि रोगों का प्रभाव न्यूनतम हो और फसल का उत्पादन अधिक हो और पहली सिंचाई के बाद गेहूँ की फसल में रोग प्रबंधन के लिए समय पर उचित कदम उठाना आवश्यक है। खेत की स्वच्छता, संतुलित उर्वरक प्रबंधन, रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन और जैविक व रासायनिक उपचार जैसे उपायों को अपनाकर रोगों के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

❖❖

For the welfare of the Farmer's, the society "Society for Advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors" willing to publish E-magazine in the name of "Krishi Udyan Darpan E-Magazine (Hindi) / **Krishi Udyan Darpan** E-Magazine (English**, Innovative Sustainable Farming**.)**, which covers across India.**

AUTHOR'S GUIDELINE

All authors submitting articles must be annual or Life member of **SAAHAS, Krishi Udyan Darpan** E-Magazine Hindi / **Krishi Udyan Darpan** E-Magazine English**, (Innovative Sustainable Farming**). Articles must satisfy the minimum quality requirement and plagiarism policy. Author's can submit the original articles in Microsoft Word Format through provided email, along with scanned copy of duly signed **Copyright Form**. Without duly signed Copyright Form, submitted manuscript will not processed.

1. The manuscript submitted by the author(s) has the full responsibility of facts and reliable in the content, the published article in **Krishi Udyan Darpan** E-Magazine (Hindi) / **Krishi Udyan Darpan (Innovative Sustainable Farming**) E-Magazine (English)**,** Editor/ Editorial board is not reliable with the manuscript.
2. Must be avoiding recommendation of Banned Chemicals by Govt. Of India.
3. The manuscript submitted by the author(s) should be in Microsoft Word along with the PDF file and the 2-3 (Coloured/Black) pictures should be in high quality resolution in JPEG format, manuscript contains pictures are should be original to the author(s).
4. Articles must be prepared in an editable Microsoft word format and should be submitted in the online manuscript submission system.
5. Write manuscript in **English** should be in **Times New Roman with font size 12 point in single spacing** and line spacing will be 1.0.
6. Write manuscript in **Hind**i should be in **Kurti Dev10 / Mangal with font size 12 point in single spacing** and line spacing will be 1.0.
7. The title should be short and catchy. Must be cantered at top of page in Bold with Capitalize Each Word case.
8. Authors Names, designations and affiliations should be on left below the title. Designations and affiliations should be given below the Authors' Names. Indicate corresponding author by giving asterisk (*) along with Email ID
9. Not more than five authors of one article.
10. It should summarize the content of the article written in simple sentences. (Word limit 100 -150) and the full article should contains (**1600 words maximum or 3 page of A4 Size**)
11. The text should be clear, giving complete details of the article in simple Hindi/English. It should contain a short introduction and a complete methodology and results. **Authors must draw Conclusions and the Reference of their articles at last**. The abbreviation should be written in full for the first time. Scientific names and technical nomenclature must be accurate. Tables, figures, and photographs should be relevant and appropriately placed with captions among the texts.
12. Introduction must present main idea of article. It should be well explained but must be limited to the topic.
13. Avoid the **Repetitions** of word's, sentences and Headings.
14. The main body of an article may include multiple paragraphs relevant to topic. Add brief subheads at appropriate places. It should be informative and completely self-explanatory.
15. Submitted manuscript are only running article and contains the field of Agriculture, Horticulture and Allied sectors.
16. All disputes subject to Prayagraj Jurisdiction only.

ABOUT THE SOCIETY

Father of Nation Mahatma Gandhi's concept of rural development meant self-reliance, and least dependence on outsiders. India is an agrarian country and about 65% of our population lives in rural areas. But unfortunately, most of us do not have any idea about the extent of poverty and the real conditions of rural India.

With the purpose of serving the agricultural fraternity and farming community the Society for Advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors (SAAHAS) was founded in 2020 (under Society Registration Act, 1860). Among multifarious ways of serving farming community we are involved in training of the farmers by organising technology dissemination programmes in villages, guiding them to adopt good agricultural practices involving planned crop management. It helps in reducing farm base losses and motivating them to become farmer level entrepreneur rather than a simple producer. It involves initiating skill based knowledge to the student of agriculture, horticulture and allied sectors to encourage them to serve the farmers in the best possible ways.

SAAHAS calls us to look into the genuine problems of farmers and address those issues for their betterment in the arena of Agriculture, horticulture and allied sectors. Besides agriculture, horticultural crop production has been given a major focus by Govt. of India in future crop diversification, improving livelihood through doubling farmers' income, economic opportunities through export and job opportunities. While good beginning is made, much is to be achieved in different areas in agro-horticulture sector.

Apart from that, SAAHAS helps developing the culture to involve more number of women in farming, processing of crops and value addition thereof for higher returns in terms of total income. SAAHAS eagerly involves with the farmers and agriculture entrepreneur to motivate them for introducing hi-tech farming, which includes growing of high value horticultural crops in hydroponics, aeroponics, polyhouse, net house and greenhouse. The society has geared up its activities to take up the challenges of biotic and abiotic stresses, emerging needs of quality seeds and planting material and reducing cost of production.

There are several government and non-government organisations intended of farmer's welfare; still there is dire need for more involvement and attachment with the farmers. Our society's noble initiative can ensure diminishing of the persistent gap between agro-technocrats, scientists with the needy farmers. We not only ensure that the farmers choose right variety of right crop, better nutrient management through diagnosis recommended system and pest diagnosis but we also help them to sale their produce at premium rates. There is a major issue of chemical residues in food, soil and ecology which is also a big concern of the century. The Society also aims to motivate the farmers either for minimal use of chemical inputs or total adoption of organic farming. Consultancy, training, awareness programs, national and international seminars and symposia and technical services are the prime activities of the SAAHAS.

Society for advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors publishes peer reviewed scientific journal, 'Journal of Applied Agriculture and Life Sciences (JAALS)', biannually since January 2020 focusing on articles, research papers and short communications of both basic and applied aspect of original research in all branches of Agriculture, horticulture and other allied sciences. To apprise the scientists and all those who are working in the field of Agriculture, horticulture and allied sectors about recent scientific advancement is the aim of the Journal.